प्रथम पांडवा भूप, खेलि जूआ सब खोयौ ।
मांस खाय बक-राय, पाय विपदा बहु रोयौ ॥
विन जानैं मदपान जोग, जादौंगन दज्झे ।
चारुदत्त दुख सह्यौ, वेसवा-विसन अरुज्झे ॥
नृप ब्रह्मदत्त आखेटसौं, द्विज सित्रभूत अदत्त-रति ।
पर रमनि राचि रावन गयौ, सातौं सेवत कौन गति ? ॥

(भूधर-जैन शतक)

भूमिका ।

यह ग्रन्थ श्रीसोमकीर्ति भट्टारकके संस्कृत ग्रन्थका स्वतंत्र-अनुवाद है। मैंने इसे अपनी शक्तिके अनुसार सरल और सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया है। आशा है कि, यह पाठकोंको रुचिकर होगा।

काष्ठासंघमें नन्दीतटगच्छ नामका एक गच्छ है। भट्टारक सोमकीर्ति इसी गच्छमें हुए है जैसा कि उन्होंने ग्रन्थके अन्तमें लिखा है। इनके बनाये हुए कई ग्रन्थ हैं। जिनमेंसे एक प्रद्युम्न-चरित्रका हिन्दी अनुवाद छप चुका है। प्रद्युम्नचरित्र इस ग्रन्थसे पांच वर्ष पीछे बना है। उसकी प्रशस्तिमें इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार लिखी है;—रामसेन—रत्नकीर्ति—लक्ष्मणसेन—भीमसेन और सोमकीर्ति। श्रीसोमकीर्ति—विक्रमकी सोलहवीं—शताब्दीके प्रारंभमें हुए है। इससे अधिक इनके विषयमें और कुछ ज्ञान नही हुआ।

निवेदक—

बम्बई
१-८-१९१२

उदयलाल काशलीवाल।

श्रीवीतरागाय नमः ।

सप्तव्यसनचरित्र ।

श्रीसोमकीर्ति भट्टारकके संस्कृत ग्रन्थका

हिन्दी अनुवाद ।

ग्रन्थकी आदिमें—अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग परिग्रह-रहित तथा संसारी जीवोंके लिये उनकी अभिलाषाके अनुसार मनोरथके पूर्ण करनेवाले श्री-पंच परमेष्ठिको, कल्याणके परम्पराकी लता और जिनभगवानके मुखकमलसे उत्पन्न हुई श्रीशारदा देवीको तथा गुरुओंके पदपङ्कजको सप्रमोद भक्तिपूर्वक नमस्कार करके जीवोंके सुखके लिये अपनी बुद्धिके अनुसार सप्तव्यसनचरित्रके लिखनेका प्रारंभ करता हूं।

उन व्यसनोंके नाम ये हैं—

जूआका खेलना, मांसका खाना, मदिराका पीना, वेश्याओंका सेवन करना, शिकारका खेलना, चोरीका करना तथा पराई स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करना। इन सातों व्यसनोंमेंसे एक २ व्यसनके सेवनसे जिन २ लो-

गोंने अनेक तरहके दुःख भोगे हैं, उन्हींका विशेष चरित्र कहनेकी मेरी इच्छा है।

जूआके खेलनेसे धर्मात्मा युधिष्ठिर महाराजने अपना राज्य रसातलमें पहुंचाया, मांसके खानेसे वक नामक राजकुमारने, मदिरापानसे तेजस्वी यादवोंने, वेश्याओंके जालमें फंसकर चारुदत्तने, शिकारके खेलनेसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्तीने, चोरीके करनेसे शिवभूति ब्राह्मणने तथा दूसरेकी स्त्रीके केवल हरणमात्रसे प्रतापी रावण आदिने दारुण दुःख अनुभव किये हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि, जब इन लोगोंने केवल एक २ ही व्यसनके स्वीकार करनेसे दुःख भोगे हैं, तो अब बुद्धिमान पुरुष स्वयं विचार कर सकते हैं कि, जो लोग सातों व्यसनोंका सेवन करनेवाले हैं, उनका क्या होता है?

इन सातों व्यसनोंके सम्बन्धमें किसने विचार किया, किसने उपदेश दिया और किसने पूछा; ये सब बातें खुलासा करनेके लिये ग्रन्थकार थोड़ेसेमें कथाके अवतारका सम्बन्ध कहे देते हैं—

सुप्रसिद्ध और विशाल जम्बूद्वीपमें भारतक्षेत्र है। उसके अन्तर्गत मगधदेशमें राजगृह नामका सुन्दर नगर है। राजगृह महाराज श्रेणिककी राजधानी थी। उनकी धर्मपत्नीका शुभ नाम चेलनी था। श्रेणिक महाराज अपनी प्रजाका सुखपूर्वक पालन करते थे। इसी बीचमें किसी समय श्रीवीरभगवान विपुलाचलके उपवनमें पधारे। तब वनपाल भगवानके आगमन समाचार महा-

राजसे निवेदन करनेके लिये फल पुष्पादि पवित्र वस्तु लेकर राजसभामें गया। उसने फल पुष्प महाराजकी भेंट करके कहा—विभो, आपके उपवनको श्रीवीरभगवानने अपने चरणकमलोंसे पावन किया है। ऐसे वक्तमें मेरा हृदय प्रेरणाकर यह कहलाना चाहता है कि—भगवानके आगमनजनित पुण्यसे आप बहुत कालतक संसार सुख भोगें और दिनोंदिन राजलक्ष्मी भी आपकी अधिक २ प्रणयिनी होवे।

महाराजने जब यह सुना कि, श्रीवीरनाथ पधारे हैं, तब वे बहुत सन्तोषित हुये, और उन्होंने शुभ समाचार लानेवाले वनपालको बहुतसे भूषण वस्त्रादि उपहार दिये। बाद सारे शहरमें आनन्द घोषणा दिलवाकर भव्य लोगोंको बुलवाये। फिर वे उनके साथ २ स्वयं भी पूजन सामग्री लेकर उपवनकी ओर चले और दूरहीसे भगवानका समवशरण देखकर हाथीपरसे उतर पड़े। बीचमें भगवानको विराजे हुये देखकर उन्होंने सानन्द भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया। पश्चात्—जलादि द्रव्योंसे भगवानकी पूजन की और उनके लिये अञ्जलि ललाटपर लगाई। इसके अन्तर मनुष्योंकी सभामें जाकर बैठ गये। और वहां भगवानके उपदेशको श्रद्धापूर्वक सुनने लगे, जो सब जीवोंके हितका एक अपूर्व साधन है। फिर सुअवसर देखकर उन्होंने भगवानसे पूछा—

नाथ, यह जीव इस गहन संसारमें किन कर्मोंके द्वारा निरन्तर दुःख भोगा करता है तथा ऐसे कोन कर्म हैं जिनके

द्वारा संसारके भीषण दुःखोंसे अपना अञ्चल छुड़ा लेता है। श्रेणिक महाराजके प्रश्नके उत्तरमें भगवान कहने लगे—राजन्, संसारके दुःखोंका कारण, जो तुमने पूछा सो बहुत अच्छा किया। इस विषयका विशेष खुलासा तो आगे चलकर कहूंगा परन्तु थोड़ेसेमें यह समझो कि—यह आत्मा इस अपार संसारमें सात व्यसनोंके सेवनसे अधिक दुःखोंका अनुभव करता है। सो इन्हीं सातों व्यसनोंमेंसे जिन लोगोंने एक २ के सेवनसे दुःख भोगे हैं, उन्हींकी कथा कहनेका आरंभ करता हूं। इतनेमें राजा श्रेणिक भी बोले—दयानिधे, मेरी भी यही उत्कण्ठा है, सो आप सप्त व्यसनोंके सेवन करनेवालोंकी कथा सुनानेका अनुग्रह करें। श्रेणिकके कहे माफिक श्रीवीरभगवानने पापोंके नाश करनेवाली पावन कथाओंके कहनेका आरंभ किया। इन कथाओंमें यही बात बतलाई जायगी कि—किन २ लोगोंने व्यसनोंके सेवनसे दुःख भोगे हैं। जूआके खेलनेसे युधिष्ठिर महाराजका अपने विशाल राज्यसे अधःपतन हुआ और साथ ही उन्हें अनेक प्रकारके भीषण दुःख सहने पड़े, यह बात संसारके एक छोरसे लेकर दूसरे छोरतक प्रसिद्ध है, सो पहिले उन्हींका उपाख्यान कहा जाता है। इसके सुननेसे लोग सुमार्गका अन्वेषणकर अपनी पापप्रवृत्तिका सुधार करेंगे।

पहिली द्यूतव्यसन कथा।

जम्बूद्वीप—भारतक्षेत्र—कुरुदेशमें हस्तनागपुर नामक एक

मनोहर नगर था। उसके राजाका नाम था धृत। धृतका जन्म कुरुवंशमें हुआ था। ये नीतिज्ञ और बुद्धिमान थे। इनके तीन स्त्रियां थीं। उनके क्रमसे अम्बा, बालिका, तथा अम्बिका नाम थे। तीनोंके धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र क्रमसे हुये। इनमें धृतराष्ट्रकी स्त्रीका नाम गान्धारि था और पाण्डुकी दो स्त्रियां थी। उनका नाम था कुन्ती तथा मद्री। इनमें धृतराष्ट्रके तो दुर्योधनादि पुत्र हुये और पाण्डुकी कुन्ती नाम स्त्रीके युधिष्ठिर भीम तथा अर्जुन और मद्रीके सहदेव और नकुल पुत्र हुये। कुन्तीका कन्या अवस्थाहीमें पाण्डुके साथ सम्बन्ध हो जानेसे कर्ण पहले ही हो चुका था।

इस तरह महाराज धृत अपने पुत्र पौत्रादि सहित आनन्द भोगते हुये सुखपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करते थे। सो उन्होंने किसी दिन शरदऋतुमें गगनमण्डलमे बादल देखा। वह बहुत दूर होनेसे महलके ऊपर भागसे बहुत सुन्दर दीख पड़ता था। उसकी मनोहरतापर महाराज धृत मुग्ध हो गये, सो उन्होंने उसी समय चित्रकारोंको बुलवाकर उनसे कहा—चित्रकारो, देखो तो यह बादलका भाग कितना सुन्दर है तुम जल्दीसे इसका चित्र खींच दो। हमारी इच्छा है कि, हम अपने महलोंको इसी ढङ्गके बनवावें। महाराजकी आज्ञानुसार चित्रकारोंने सब तरहके रङ्गोंको जल्दीसे मंगवाकर बादलका चित्र खींचना चाहा कि इतनेहीमें वायुके चलनेसे बादल खण्ड २ होकर न मालूम कहां देखते २

अन्तर्हित हो गया। तव भयसे डरते २ विचारे चित्रकार लोग महाराजसे प्रार्थना करने लगे—महाराज, वायुवेगसे वादल कहां चले गये, यह हम नहीं कह सकते। राजाने वादलोंकी जब यह दशा देखी, तव उन्हे संसारसे बहुत वैराग्य हुआ। और साथ ही चिन्ताने उनके मनमें अपना अधिकार जमाया। वे विचारने लगे कि,—अहो जिस प्रकार ये वादल आँखोंके देखते देखते नष्ट होगये, उसी तरह यह संसार भी तो क्षणभङ्गुर है। यह पुत्र पौत्र, स्त्री तथा और २ वन्धुजनोंका जितना समुदाय है, वह सव दुखःका देनेवाला है और इसीके मोहमें फंसकर यह जीव नानाप्रकारके दुःखोंको भोगता है। जिन उत्तम पुरुषोंने मोहके पञ्जेमेंसे अपने आत्माको छुटाकर दिगम्वरी दीक्षा गृहण की है, वे ही इस गहन संसारसे पार होकर अखण्ड शिवसुन्दरीके सुखके भोगनेवाले हुये हैं। इस लिये मुझे भी यही उचित है कि—पुत्र वन्धु तथा धनादिका सम्वन्ध छोड़कर अविनश्वर मोक्षमहलकी देनेवाली जैनेन्द्री दीक्षा स्वीकार करूं। इसके वाद अपने विचारानुसार महाराज धृतने वड़े पुत्र धृतराष्ट्रके लिये तो कुलपरम्परागत राज्यका भार सौंपा और पाण्डुको युवराज पद देकर विदुरके साथ २ मोक्षसुखकी साधन जिनदीक्षा स्वीकार की। जिनदीक्षाका लाभ कुगतिमें जानेवाले लोगोंके लिये वहुत कठिन है। आगे धृतमुनिने तो कितने दिनोंतक कठिनसे कठिन तपश्चरण कर घातिया कर्मोंका नाम शेष किया और केवलज्ञानी होकर

सदाके लिये मोक्षपद प्राप्त किया। और विदुर मुनिराज पृथ्वीतलमें विहार करने लगे।

उधर धृतराष्ट्र पाण्डुके साथ २ राज्यका पालन करते थे। प्रजाका पालन करते हुये इन दोनोंका बहुत समय सुखपूर्वक बीत गया, परन्तु इन्हें उसका कुछ परिज्ञान नहीं हुआ। एक दिन दोनों भाईयोंने एक भ्रमरको कमलके भीतर मरा हुआ देखा, सो उसके देखनेमात्रसे इन्हें बहुत वैराग्य हुआ। उन्होंने उसी वक्त अपने सारे राज्यके दो विभाग करके एक भाग दुर्योधनादिके लिये और एक भाग पाण्डुके युधिष्ठिर आदि पांचों पुत्रोंके लिये दे दिया। और स्वयं पाण्डुके साथ २ जिन दीक्षा अङ्गीकार कर दुःसह तपश्चरण करना आरंभ किया। उधर कौरव और पाण्डवोंका परस्परमें इतना स्नेह बढ़ा और ये लोग सुख भोगनेमें इतने आसक्त होगये कि, कालकी गतिको भी नहीं जान सके। कौरवोंके मामाका नाम शकुनि था। उसने राज्यविभागकी व्यवस्था देखकर विचारा कि—आधा राज्य केवल पांच पाण्डवोंके लिये दिया गया है। इससे ये लोग तो बड़े ही प्रतापी मालूम होते हैं। परन्तु कौरवोंका प्रताप कुछ भी मालूम नहीं पड़ता है, क्यों कि ये सौ हैं, और राज्य उन्हींके बराबर आधा है। इससे तो इन लोगोंका वस्त्रशस्त्रादि प्रबन्ध भी ठीक २ नहीं हो सकेगा, फिर हम लोग क्या करेंगे? सच है प्रीति सब जगह धनके पीछे हुआ करती है। इस विचारसे उसने और कुछ उपाय न देखकर पांडव और कौरवोंके प्रेममें वाधा

डालना आरंभ किया। कौरवोंके कान भरे गये कि—तुम्हें कुछ खयाल भी है? कहां तो तुम सौ लोगोंके लिये आधा राज्य और कहां इन पांच पाण्डवोंके लिये आधा राज्य ! देखो, इस राज्यसम्पदासे ये लोग कैसे तेजस्वी दीखते हैं? इन लोगोंके साम्हने तुम लोग तो ऐसे मालूम होते हो, जैसे मुरझाये हुए कमलकी कलियां! ठीक तो यह है कि सव वेषोंमें धनहीका वेष उत्तम गिना जाता है। तुम्हीं यह वात सोचो कि—जितना राज्य पांच जनोंको दिया गया, उतना ही सौ जनोंके लिये देना उचित था क्या ? इस तरह शकुनिके प्रतिदिन उत्तेजित करते रहनेसे कौरवोंकी प्रकृतिमें दुष्टता आ ही गई। बुद्धिमान दुर्योधनने अपने उत्तेजित भाइयोंको उस वक्त तो किसी तरह समझा बुझाकर शान्त कर दिये, पीछे कुछ समय बीतजानेपर उसने अपनी बुद्धिसे कल्पना कर लाखका एक सुन्दर महल वनवाया, जिसके ऊपर नीचे जहां देखो वहीं, लाख ही लाख लगी थी। जव महल वनकर तयार होगया, तव एक दिन उसने पांडवोंको भोजनके लिये निमंत्रित किये। निमंत्रणके अनुसार पांडव अपनी माता कुन्तीको साथ लेकर आये। आते ही वे नवीन महलकी अपूर्व शोभा देखकर मुग्ध होगये। दुर्योधनने महलके भीतर लिवा ले जाकर इन लोगोंका खूव अतिथिसत्कार किया। और सोने आदिका भी ठीक २ प्रबन्ध करवा दिया, जिससे ये लोग रात्रि यहीं वितावैं।

धीरे २ सूर्यदेव भी अस्ताचलपर पहुंचे। कुछ रात्रि

वीती। निद्राका अवसर आनेपर पांडवोंने वहीं शयन किया। उनकी आंख लगी ही थी कि, कौरवोंने अपनी दुष्टतासे महलमें अग्नि लगा दी। लाखके कारण अग्निने भीषण भयंकरता धारण की। किंवाड़ोंकी संधियें मिलने लगीं। और लाख गल गल कर पांडवोंके ऊपर गिरने लगी उसके गिरते ही पांडवोंकी निद्रा टूटी। उन्होंने कौरवोंकी दुष्टता समझ ली। अब वाहिर निकलनेके लिये कठिनता आई। किसीको मालूम नहीं कि—निकलनेका रास्ता किधर है। सहदेव ज्योतिष शास्त्रका अद्वितीय विद्वान् था। उससे निकलनेका मार्ग पूछा गया, तो उसने विचार कर उत्तर दिया कि, वाहर निकलनेके लिये यहां एक सुरंग है, उसीमेंसे हम लोग निकल सकेंगे। यह सुनते ही भीमने यहां वहां देखना आरंभ किया। एक स्थानमें उसे एक शिला मालूम पड़ी, जिसे अपने भीमवलसे उठाकर उसने सुरंगका मार्ग निष्कण्टक कर दिया। उसी रास्तेसे कुन्तीको लेकर पाण्डव लोग निर्विघ्न वाहिर निकल गये।

पाण्डव लोग फँसे तो थे वड़ी भारी भीषण विपत्तिमें, तौ भी सौभाग्यसे वाहर निकल आये। सच है, दुष्टोंकी दुष्टता पुण्यवानोंका कुछ नहीं विगाड़ सकती। वहांसे गुप्तरीतिसे निकल कर पाण्डव लोग इच्छानुसार पृथ्वीमें घूमते हुये तथा तपस्वियोंके स्थानोंको और नाना तरहके सुन्दर २ वनोंको देखते हुये हस्तनागपुर पहुंच गये। उधर कौरवोंकी निन्दा होने लगी। सब लोग उनकी दु-

ष्टता जान गये। कौरवोंको उस समय वड़ा ही लज्जित होना पड़ा। उनके मुख मलीन होगये। ठीक कहा है— जो लोग बुरे कामके करनेवाले हैं, उनके निर्मलता कहांसे आवे? वे तो मलीन होते ही हैं।

पाण्डव लोग इसी तरह वसुन्धराकी शोभा देखते हुये पीछे लौटे और माकंदी नगरीमें आ पहुंचे। नगरी वड़ी ही सुन्दर थी। उसे कवि लोग स्वर्गपुरी वताते थे। उसके स्वामी थे द्रुपद्। उनकी महाराणीका नाम जयावती था। और उसके गर्भसे उत्पन्न हुई राजकुमारीका नाम द्रौपदी था। द्रौपदी पृथ्वीभरमें प्रसिद्ध थी। जव महाराज द्रुपदने देखा कि—पुत्री युवती होगई है, तव उन्हें विवाहकी चिन्ताने चिन्तित किया। सच है—उत्तम पुरुषोंको पुत्रीकी वड़ी ही चिन्ता होती है। उन्होंने अपने मंत्रियोंसे पूछा कि—मुझे कन्याके विवाहकी वड़ी ही चिन्ता है। यह युवती राजकुमारी किस उत्तम वरके लिये प्रदान की जाय? विचार कर जल्दी उत्तर दो, जिससे मेरे ऊपरसे यह चिन्ताका भार उतरे। मंत्रियोंने विचार करके महाराजको यह सलाह दी कि—महाराज, प्रौढ कन्याका तो स्वयंवर ही करना सवसे उत्तम है। मंत्रियोंकी सम्मतिसे महाराज चित्तमें वहुत कुछ सुखी हुये। उन्होंने उसी समय शुभ मुहूर्त्त तथा शुभ योग देख कर पुत्रीका स्वयंवर समारंभ करवाया। देश देशके राजा महाराजाओंके लिये निमंत्रण भेजा गया। दुर्योधन आदि सभी वड़े २ राजा लोग आये। उस वक्त यह निश्चय

किया गया कि—जो इस राधावेधको वेधैगा, वही कन्याका स्वामी हो सकेगा। उसीके हृदयमें द्रौपदी वरमाला डालैगी।

दैवयोगसे पांडव भी वहां आ गये। इन्हें वे लोग न जान सकें, इस लिये ये अपने खास वेपको पलट कर गुप्तरीतिसे रहा करते थे। स्वयंवरके लिये आये तो वड़े २ दूर देशके राजा लोग, परन्तु उनमें किसीकी हिम्मत न हुई कि, राधावेधको वेधें। सवके चेहरे फीके पड़ गये। इतनेमें अर्जुनने उठकर कहा कि—जो मनुष्य इस राधावेधको वेधेगा, उसे कन्या मिलनेमें कुछ सन्देह तो नहीं है? उसके कुलहीन जातिहीन होनेसे कोई वाधा तो नहीं आवेगी? यदि ऐसा हो, तो मैं भी अपने पुरुषार्थकी परीक्षा करूं। सव राजाओंने हँसकर कहा कि—क्या तुम पार्थिव (अर्जुन) हो, जो ऐसे निर्भय होकर वोल रहे हो? अर्जुनने कहा—क्या पृथ्वीमें एक ही पार्थिव है? दूसरा नहीं है? राजा लोगोंने कहा,—हां, पृथ्वीमें इस विपयका जाननेवाला एक अर्जुन ही है। उसके समान अभीतक और कोई नहीं सुना गया है।

अर्जुनने कहा,—अस्तु, इससे आपको क्या? मैं कोई भी क्यों न होऊं? आपको तो कामसे काम है विवादसे कुछ प्रयोजन नहीं है। राजा लोग कहने लगे—हमें इससे कुछ मतलव नहीं कि—तुम्हारी जाति तथा कुल क्या है, तुम अपना कर्त्तव्य पूरा करो। उन लोगोंके कहनेके अनुसार वली अर्जुन कमर वाँधकर राजा लोगोंके आगे खड़ा हुआ

और हाथमें धनुष लेकर बोला—आप जानते हैं, यह मेरा सुन्दर धनुष है। मैं इसे आप लोगोंको इस अभिप्रायसे देना चाहता हूं कि, आप लोग इसे चढ़ावें। नहीं तो पीछे आप लोग यह कहेंगे कि इसे तो हम भी चढ़ा लेते। राजाओंने कहा—नहीं, नहीं, तुम ऐसा न समझो। इस विषयमें तुम पराक्रमी जान पड़ते हो, इस लिये इसे तुम ही चढ़ा सकोगे और साधारण लोग नहीं चढ़ा सकते। उन लोगोंके कहते ही वीर अर्जुनने सबोंके देखते २ धनुषको ऐसे जोरसे चढ़ाया कि, उसके शब्दको मेघकी गर्जन समझ—कर मोर शब्द करने लगे। धनुष चढ़ाकर अर्जुनने फिर भी कहा कि—लो अब तो इसपर प्रत्यंचा भी चढ़ा दी गई आप लोग इसके द्वारा निशाना वेधैं। सबोंने उत्तरमें यही कहा, यह धनुष तुम्हारे ही योग्य और उत्तम है। उनके कहते ही अर्जुनने ऊपरको मुट्ठी और नीचेको दृष्टि करके राजा लोगोंके देखते २ राधावेधको वेध दिया। वेध होते ही द्रौपदी सोनेकी झारी तथा एक सुन्दर माला लेकर आई और उसने पांचों पाण्डवोंके बीचमें बैठे हुये बुद्धिमान अर्जुनके कण्ठमें माला डाल दी। इतनेमें वायुके अधिक वेगसे माला उड़ पड़ी। मालाके उड़ते ही सब लोगोंमें बड़ा भारी हल्ला मच गया। वे कहने लगे कि, द्रौपदी अपने धर्मसे भ्रष्ट है। इसने इन पांचोंको पति बनाये हैं। राजा लोग भी बिगड़ पड़े और कहने लगे कि—हमारे बैठे हुये इसने इस भिखारीको क्यों पति बनाया? सब मिलकर युद्धकी तयारी करने लगे। इतनेमें

उन लोगोंमेंसे किसीने कहा—पहले दूत भेजकर उससे कन्या लौटानेके लिये कहलवाना चाहिये और यदि वह स्वीकार न करे, तो फिर युद्ध तो बना बनाया है ही। विचारके अनुसार दूत भेजा गया। दूतने जाकर अर्जुनसे कहा—तुम्हें चाहिये कि राजकुमारीको राजा लोगोंके लिये देकर तुम सुखपूर्वक रहो। राजकुमारीने बड़ी भारी मूर्खता की, जो राजा लोगोंको छोड़कर तुम्हें अपना स्वामी बनाया। तुम बुद्धिमान हो, हृदयमें विचार कर कुमारीको राजाओंके लिये दे दो और अच्छी तरह जीवन-यात्रा करो। उत्तरमें अर्जुनने दूतसे कहा—तुम जाओ और अपने स्वामीसे जाकर कह दो—कि सीधी तौरसे तो हम राजकुमारीको नहीं देंगे, हां, यदि कोई युद्ध भूमिमें बहादुरीसे ले सके, तो ले लेवे। क्या तुमने कभी किसीको अपनी वल्लभा यों ही देते हुये देखा—अथवा सुना है। तुम्हारे स्वामियोंमें ऐसी दुर्बुद्धि क्यों उत्पन्न हुई? यदि उन्हें लेनेकी इच्छा है, तो रणमें आवैं। क्रोधमें आकर अर्जुनने दूतको उसी वक्त निकलवा दिया। दूतने जाकर यह सब हाल राजा लोगोंको सुना दिया। सुनते ही वे बड़े बिगड़े। और युद्धके लिये तयार हो गये।

अर्जुनने देखा कि, वीर लोग युद्धभूमिमें इकठ्ठे हो रहे हैं। इससे उसे बड़ा ही क्रोध आया। वह उसी वक्त श्वशुरके साथ २ युद्धके लिये निकल पड़ा। दोनों ओरके योद्धाओंकी मुठभेड़ हो गई। घोर युद्ध होना आरंभ हुआ। अर्जुनने राजाओंको भयसे व्याकुल कर दिये। दुर्योधन

यह देखकर कि, सेनाका सर्वनाश हुआ जाता है, उसी वक्त अपने गांगेय (भीष्म) आदि वीरोंको साथ लेकर युद्धभूमिमें आ उपस्थित हुआ। अर्जुनने गांगेयको देखकर विचारा कि—ये तो मेरे पूज्य हैं। मेरे हाथसे इनका वध क्यों कर हो सकेगा? निदान उसने एक वाणपर अपना नाम लिखकर उसे भीष्मपर फेंका। जब वह भीष्मकी गोदमें जाकर पड़ा, तब उन्होंने उसे वांचा और वहां अर्जुनका आना समझ कर दुर्योधनसे कहा–तुम जानते हो, ये लोग पाण्डव हैं। और ठीक भी है कि पाण्डवोंके विना ऐसा पुरुषार्थ किसका हो सकता है? दुर्योधनने पूछा–आपने यह कैसे जाना कि, ये पाण्डव हैं? तब गांगेयने अर्जुनके नामका वाण दिखला दिया। उसे वांच कर विचारे दुर्योधनकी रही सही हिम्मत भी जाती रही। वह दुःखके साथ किसी तरह रथसे नीचे उतरा और मायासे आंखोंमें आंसू लाकर तथा भेंटनेके लिये अकवार पसारकर पाण्डवोंके साम्हने गया और बहुत दुःखी होकर रोने लगा। तथा गद्गद स्वरसे बोला—नाथ, मैं बड़ा ही अभागा हूं। लोक निन्दासे मेरा हृदय जला जा रहा है। मैं तो निराश हो चुका था, परन्तु अच्छा हुआ, जो आप सब मेरे पुण्यके उदयसे आ गये। न तो मैंने यह जाना था कि, वह घर लाखका बना हुआ है और न मैंने उसे जलानेका उद्योग ही किया था। परन्तु तौ भी लोगोंने मुझे ही अपराधी ठहराया। मेरा बड़ा भारी वदनाम हुआ। परन्तु यह नियम है कि, जो शुद्ध चि-

त्तके आदमी होते हैं, वे पापी कभी नहीं होते—उन्हें कलंक नहीं लगता। यही कारण है, जो मेरे पुण्यसे आप लोग पीछे आ मिले। उस समय कौरव और पाण्डव परस्पर प्रेमपूर्वक मिले। सब लोगोंके चित्तमें बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर शुभ मुहूर्त्त तथा उत्तम योगमें अर्जुनका विवाह द्रौपदीके साथ हो गया। सब लोग विवाह करके अपनी २ राजधानीमें गये। कौरव और पाण्डव भी साथ २ अपनी राजधानीमें गये। पहलेकी तरह वे सब प्रीतिपूर्वक रहने लगे। और परस्पर एक दूसरेका विश्वास करने लगे।

कुछ कालके अनन्तर फिर उसी शकुनिने इन लोगोंकी परस्पर मैत्रीको बिगाड़ना आरंभ किया। सच है—दुष्टोंका यह स्वभाव ही होता है, जो उन्हें विना दूसरोंको परस्पर लड़ाये भिड़ाये सुख ही नहीं होता। आकाशमें चांदनीको देखकर कुत्तेके विना और कोन भोंकता है? निदान शकुनिने किसी न किसी तरह उनके स्नेहको तोड़ ही डाला। सच है, स्नेहके (तैल)के निकल जानेपर खल (खली)में प्रीति (सचिक्कणता) कहां रह सकती है? अब कौरव लोग पाण्डवोंके दोष ढूंढने लगे। जैसे उत्तम पुरुषोंके पीछे शाकिनी लग जाती है।

एक दिन युधिष्ठिरके जीमें आया कि—जूआ खेलना चाहिये। उन्हें यह विचार क्या सूझा, यों कहना चाहिये कि—आजहीसे इनके भाग्यका चमकता हुआ सितारा अस्त होने लगा। दुर्भाग्यने भी उस समय युधि-

ष्ठिरको ऐसी प्रेरणा की कि, उन्हें विना जूआ खेले एक दिन भी चैन नहीं पड़ती थी–वे प्रतिदिन जूआ खेलते थे। एक दिन सभामें कौरव और पाण्डव वैठे थे, वहींपर युधिष्ठिर दुर्योधनके साथ जूआ खेलने लगे। दुर्योधनका पाशा पड़ता तो वहुत उत्तम था, परन्तु भीमके हुंकारसे वह उल्टा हो जाता था। उसे वड़ी ही चिन्ता हुई। वह भीमके वहांसे चले जानेका उपाय सोचने लगा। इतने हीमें दुर्बुद्धिने उसका साथ दिया। दुर्योधन भीमसे वोला–महाभाग, इस समय मुझे खूव प्यास लग रही है, उसके मिटानेका उपाय तुझे ही करना चाहिये। क्यों कि–उसके लिये तू ही समर्थ है। भीमने कहा–आप घवरावें नहीं, मैं अभी कर्पूर आदि वस्तुओंसे सुगन्धित और शीतल जल आपके लिये लाता हूं। दुर्योधन वोला–नहीं, नहीं, ऐसा जल तो मुझे अच्छा ही नहीं लगता। ऐसे जलके लाने-वाले तो मेरे यहां भी वहुत हैं। भीमने कहा–तो जैसा जल आप चाहते हैं, वैसा ही मैं ला सकता हूं, आप अपने चित्तकी वात वतावें। दुर्योधन वोला–गंगाका जो अगाध जलसे भरा हुआ ह्रद है, उसमें कमरतक पैठकर तुम अपनी गदासे पानीका घात करना और उससे जो पानीके छींटे उड़ें, मुझे उनके पीनेकी रुचि है। यह सुन कर यद्यपि भीमकी इच्छा नहीं थी, तो भी वह लज्जाके वश जल लेनेके लिये चला गया। उसे गये हुए दो पहर हो गये। इधर दुर्योधनकी वन पड़ी। उसकी जीतका पांसा पड़ने लगा। युधिष्ठिर महाराजने पहले अपना खजाना हारा,

दूसरी वार देश हारा, तीसरी वार हाथी और चौथी वार घोड़े हारे। पांचवीं वार सारे वाहन और गाय भैंस आदि हारे। अन्तमें वे द्रौपदीसहित अन्तःपुर भी हार गये। इसके वाद कुछ भूषणादि वचे थे, सो आठवीं वार वे भी सव हार गये। इतनेमें भीम जल लेकर आ गया। दुर्योधनसे वोला–लीजिये, मैं आपके लिये जल लाया हूं। इसे पीकर अपनी प्यासका उपशम कीजिये। दुर्योधनने कहा कि–अव तो मुझे प्यास नहीं है। भीमको इससे वड़ा ही आश्चर्य हुआ। परन्तु जव उसने युधिष्ठिरको विल्कुल निष्प्रतिभ देखा–कुम्हलाया हुआ पाया, तव दुर्योधनकी सव चालाकी समझ ली। जान लिया कि, इसने मुझे वड़ा भारी धोखा दिया। इसका भीमको वहुत दुःख हुआ। इसी समय दुर्योधन युधिष्ठिरसे वोला–युधिष्ठिर, तुम जानते हो कि, जो लोग अपना गौरव रखना चाहते हैं–जो शूर वीर होते हैं और जो विल्कुल सत्य वोलनेवाले होते हैं–उन्हें दूसरोंका देश, दूसरोंका घर अच्छा नहीं लगता है। वे ऐसी जगह रहनेमें अपनी अवहेलना समझते हैं। क्यों कि दूसरोंकी वसुन्धरा उनके लिये लघुताकी कारण है। देखो, इसे तो जगत जानता है कि, सूर्यमण्डलको प्राप्त होकर चन्द्रमा भी छोटा हो जाता है। यही हालत दूसरोंके घरपर रहनेवाले सभ्य तथा गुणवानोंकी भी होती है। इस लिये तुम्हें अपने भाइयोंके सहित यहां मेरे देशसे शीघ्र चले जाना चाहिये। दुर्योधनके वचन युधिष्ठिरके हृदयमें शूलसरीखे चुभ गये। वे उसी वक्त उठ कर जा-

नेके लिये तयार हो गये । उनका तेज मलीन हो गया । उनके पीछे २ द्रौपदी भी जानेके लिये तयार हुई । यह देखकर पापी दुर्योधन बोला—द्रौपदी, तुम्हें युधिष्ठिर हार चुके हैं, इसलिये अब तुम्हे हमारे अन्तःपुरमें रहना होगा? परन्तु उसके वचनोंका कुछ भी खयाल न कर जब द्रौपदी चलने लगी, तब पापी दुर्योधनने उसका अंचल पकड़ लिया । जब अंचलके पकड़ लेनेपर भी वह साध्वी नहीं ठहरी—वस्त्र उसके हाथमें आ गया और द्रौपदीकी ओर देखता है, तो वह वस्त्रसे ढकी हुई है, तब उसने लपक कर फिर भी उसका वस्त्र पकड़कर खींचा । परन्तु इस बार भी द्रौपदी वैसीकी वैसी वस्त्रसे ढकी रही । इस तरह उस दुराचारीने बेचारी सीधी साधी द्रौपदीपर सात वार बलात्कार कर हाथ चलाया, परन्तु उस सतीके अप्रतिम शीलने उसे वस्त्रहीन न होने दी । धर्मशील युधिष्ठिर महाराज यह सब पापकर्म आंखोंसे देखते रहे परन्तु उन्होंने अपने हृदयमें विकार न होने दिया । पर जब मंत्रियोंसे दुर्योधनकी दुष्टता न सही गई और उन्होंने उसे धिक्कारकर कहा कि—"पापी, क्यों इस सतीको क्रोधित करके यमके घरका अतिथि बनना चाहता है?" तब कहीं उस दुष्टने द्रौपदीका पीछा छोड़ा । निदान वह स्वामीके पीछे हो ली । लोग यह देखकर कहने लगे कि, शील सब जगह सहायक होता है ।

भीमसेन वगैरहने अपने बड़े भाईसे कहा-"आपने दुर्यो-

धनादिको पृथ्वी हार दी है, इसलिये अव हम युद्धक्षेत्रको चलते हैं। अर्थात् वहां युद्ध करके उसको फिर छीन लेंगे। इसपर युधिष्ठिरने कहा,—तुम कहते हो, वह ठीक है, परन्तु बुद्धिमानोंको यह उचित नहीं। उनका तो कर्तव्य है कि, जो मुँहसे वचन निकल जावें, उनका पालन करें। जो पृथ्वी हारकर मैंने दुर्योधनके लिये दे दी है, उसे मैं वापिस कैसे ले लूं? क्या इससे मेरी सत्यतामें लांछन न लगेगा?

भाइयो, देखो! सारे राज्यको तृणकी तरह छोड़कर जव ये पांचों भाई निकल गये, तव तुम यह वात नियमसे समझो कि—जूवाके खेलनेसे जीवोंको दुःख ही होता है। लोग देखते हैं और ये पांचों भाई पैदल चले जा रहे हैं। उन्हें इनकी दारुण दशापर वड़ा ही दुःख होता है। दृढ़प्रतिज्ञ पाण्डव द्रौपदीको साथ लेकर धीरे २ नगरसे वाहिर निकले। तेजस्विता सव नष्ट हो गई। उस समय लोगोंके लिये यह विषय एक किम्वदन्ती सा हो गया। सव यही कहने लगे,—देखो, जूवाके खेलनेका फल! जो ऐसे तेजस्वी लोग भी नगरसे निकले जा रहे हैं।

ये पुरसे निकलकर इच्छानुसार धीरे २ चलने लगे। चलते २ जव इनसे द्रौपदी ठहरनेके लिये कहती, तव इन्हें वहीं ठहर जाना पड़ता था। वेचारी थी तो स्त्री ही न? वह चलना क्या जाने? कभी महलसे नीचे भी तो उतरी नहीं थी। कहीं सुख कहीं दुःख, कहीं ग्राम कहीं वन, कहीं

भोजन कहीं भीख और कहीं शय्या कहीं ककरीली भूमिः इसी तरह उनके वहुत दिन वीत गये। सच है—धैर्यशाली मनुष्योंके चित्तमें कभी सुख दुःखका खयाल नहीं होता। अनेक वन, देश, पुर, तथा ग्रामादिमें घूमते हुये और फलादिसे अपना निर्वाह करते हुये निश्चलप्रतिज्ञ शूर पाण्डव सुखदुःखपूर्वक कई वर्षोंमें घूमते घूमते विराटपुर शहरमें आ निकले। वहांकें राजाका नाम भी विराट ही था। ये लोग इस नगरमें नानाप्रकारका वेष धारणकर राजाके पास गये। उनमें युधिष्ठिर महाराज भाट वने थे, भीम रसोइयेके रूपमें थे, अर्जुनने कंचुकीका रूप धारण किया था, सहदेव ज्योतिषी वने थे, नकुल सहीस वना था और द्रौपदी मालिन बनी थी। राजा इनसे प्रसन्न हुआ और उसनें जो जिस वेषमें था, उसे उसीके अनुरूप कार्यमें नियुक्त कर दिया। सव लोग राजाके सेवक वनकर रहने लगे।

विराटके एक सुन्दर स्त्री थी। वह सर्व गुणोंसे भूषित थी। इसका भाई अर्थात् महाराजका साला कीचक एक दिन अपनी वहिनसे मिलनेके लिये आया। अन्तःपुरमें इसने मालिनके वेषमें द्रौपदीको देखी। देखते ही कामवाणसे घायल हो गया और प्रतिदिन द्रौपदीसे अपनी बुरी वासना जाहिर करने लगा। सती द्रौपदी लज्जाके मारे उससे कुछ नहीं कहती थी। परन्तु जव देखा कि, इस दुष्टकी पापवासना ऐसे नष्ट न होगी, तव उसने एक दिन भीमसे उसका सव हाल सुना दिया। भीमने द्रौपदीसे कहा—तुम

डरो मत, सब अच्छा होगा। देखो, नगरके बाहिर एक महादेवका मन्दिर है। किसी तरह इसे धोखा देकर वहां लिवा ले जाना। इसके कर्मका फल मैं इसे वहीं भुगता दूंगा। भीमके कहनेके माफिक दूसरे दिन द्रौपदी कीचकसे बोली—जिस तरह तुम मुझे चाहते हो, उसी तरह मैं भी तुम्हे चाहती हूं। सो आज ही तुम्हारा हमारा समागम नगरके बाहिर महादेवके मन्दिरमें होगा। द्रौपदीके इसतरह इच्छा जाहिर करनेपर वह बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और नाना तरहकी शृंगारसामग्री लेकर रात्रिके वक्त महादेवके मन्दिरमें गया। वहीं भीम द्रौपदीके रूपमें गुप्त रीतिसे बैठा हुआ था। यह अपने हिताहितको न जानकर द्रौपदीके प्रेमसे अकेला ही मन्दिरके भीतर घुस गया और कामसे पीड़ित होकर बोला—प्यारी मालिन, तुम नहिं जानती कि—आज तुम्हारा अहोभाग्य है, जो मेरा प्रेम तुमपर हुआ। आओ, आओ, अब देर न करो और मुझे हृदयसे लगाओ। तुम जो चाहोगी, वही तुम्हें दूंगा। तुम्हें अपने अन्तःपुरकी प्रधानरानी बना दूंगा। मैं तो तुम्हारे प्रेमके पीछे हूं। इसके उत्तरमें द्रौपदीने कहा—आपका कहना वास्तवमें ठीक है। मेरा अहोभाग्य, जो आप यहां आये। जैसा आप कहते हैं, मैं वही करूंगी। क्योंकि जैसा मुझपर आपका प्रेम है, वैसा ही मेरा भी है। कीचकने कामविकारसे व्याकुल होकर ज्यों ही द्रौपदीरूप भीमको अपनी भुजाओंसे आलिङ्गन करना चाहा, त्योंही भीमने आलिङ्गनके ही छलसे उसे भुजा-

ओंके वीचमें पकड़कर इतना जोरसे दवाया कि, उसकी चेत-नातक विदा हो गई और वह मूर्छित हो गया। थोड़ी देर-बाद जब उसे सचेत हुआ, तब वह भीमको नमस्कार कर सीधा तपोवनकी ओर चल दिया। उसे इस दुःखसे वहुत वैराग्य हुआ। सो उसी वक्त किसी निर्जन वनमें जाकर कीचकने दोनों लोकमें सुख देनेवाली जिनदीक्षा ले ली। जब प्रातःकाल हुआ और कीचकके नौकरोंने उसे न देखा, तब वे चारों ओर उसकी खोजमें निकले। परन्तु जब कहीं भी उसका पता न लगा, तब उन्होंने यह सब हाल महाराज विराटसे जाकर कहा। उस समय राजाने यह समझकर कि, कहीं यह अपने देशमें न चला गया हो, एक मनुष्यको पता लगानेके लिये भेज दिया। उसने जाकर उसके भाइयोंसे पूछा-क्या कीचक यहां भी नहीं आया? यह सुनकर कीचकके भाइयोंको वड़ा ही सन्देह हुआ। वे सौके सौ भाई वहांसे कीचककी खोजमें ग्राम २ देखते तथा लोगोंसे पूछते हुए निकल पड़े। जब विराटनगरमें आये, तब उनसे किसीने कहा—शहर वाहिरके मन्दिरमें एक मालिनके साथ २ मैंने कीचकको घुसते हुये देखा था। परन्तु निकलते समय अकेली मा-लिन ही दीख पड़ी थी। यह सुनते ही इन्हें वड़ा भारी क्रोध आया। इन लोगोंने विचार किया-उस दुष्टा मालिनके पास चलना चाहिये और किसी तरह उसे शहर बाहर ले जाकर जला देनी चाहिये। इसी विचारसे वे लोग द्रौपदीको पकड़कर शहरवाहर ले आये और चिता

वनाकर उसमें द्रौपदीको जलाने लगे। इतनेमें किसीने जाकर भीमसे यह कह दिया कि,—देखो, मालिनको (द्रौपदी) कीचकके भाई जला रहे हैं। सुनते ही भीम दौड़ा और वहां जाकर उसने कीचकके भाइयोंको देखा कि वे द्रौपदीके जलानेके लिये चिता तयार कर रहे हैं। उसने सती द्रौपदीको तो चितापरसे उठा ली और उन सबको उठा २ कर अग्निमें होम दिये। उनमेंसे एकको जिह्वा काटकर छोड़ दिया। वह गूंगा होकर शहरमें गया और विराटसे कुछ संकेत करने लगा। विराटने अपने कर्मचारियोंसे कहा—देखो तो, यह मूक मनुष्य क्या कहना चाहता है?

उत्तरमें भीम बोला—जो कुछ यह कहता है, वह मैं आपको समझाये देता हूं। इसका कहना है कि—"महाराज, कीचकके दुःखसे उसके सब भाई अग्निमें जलकर भस्म हो गये। मैंने उन्हें वहुत रोका, परन्तु उन्होंने मेरी एक न सुनी। अब मैं क्या करूं? मेरा कहना उन लोगोंने नहीं माना" विराटने कहा—यह ठीक कहता है। निदान उस गूंगेको उसी दुःखदशामें अपने स्थानको लौट जाना पड़ा। उसकी कुछ सुनाई नहीं हुई। इस तरह पाण्डवोंने विराटनगरीमें रहकर बारह वर्ष विताये। इसके पीछे वे द्वारका गये और वहां जाकर वासुदेवसे मिले। उनका दुःख दूर हुआ। वहां श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राका पाणिग्रहण अर्जुनसे हो गया। श्रीकृष्णने यह चाहा कि, कौरव और पाण्डव फिर भी किसी तरह मिल जावें और

इस आशयसे उन्होंने उनका दूततक बनना स्वीकार कर बहुत कुछ उद्योग किया, परन्तु पाण्डव और कौरव नहीं मिल सके। कौरव और पाण्डवोंकी शत्रुता संसारभरमें फैल गई। कुरुक्षेत्रमें इन दोनोंका बड़ा भारी भीषण युद्ध हुआ। उसमें कौरवोंका सर्वनाश हुआ। जयलक्ष्मीने पाण्डवोंका दासत्व स्वीकार किया। पाण्डवोंकी ओर श्रीकृष्ण सहायक थे। इन्होंने पाण्डवोंको बड़ी भारी सहायता दी थी। कौरव और पाण्डवोंका युद्ध भारतवर्षमें प्रसिद्ध युद्ध हुआ है। उस समय श्रीकृष्णने पाण्डवोंको प्रीतिपूर्वक हस्तिनागपुरका राज्य दिया। और पाण्डव इच्छानुसार स्वतंत्रतासे राज्य करने लगे।

एक दिन नारद पाण्डवोंके यहां आये। उन्हें आते हुये देखकर पाण्डव बहुत सन्तुष्ट हुये और उन्होंने उनका अर्घ जलादिसे बहुत भक्तिपूर्वक सत्कार किया। नारदने कुछ समयतक वहीं ठहरकर कुशल समाचार पूछे। इसके बाद वहांसे उठकर वे द्रौपदीके महलकी ओर गये। उस समय द्रौपदी स्नान करके निवृत्त हुई थी, सो दर्पणको आगे रखकर अपने वेषको सजा रही थी। वेष सजानेकी आकुलतासे द्रौपदी आये हुये नारदको न देख सकी। नारदको द्रौपदीकी इस धृष्टतापर बड़ा ही क्रोध हुआ। वे उसी वक्त उसके महलसे वापिस चले गये और कैलाश शैलपर पहुंचकर विचारने लगे—देखो, इस अभिमानिनीने अपने सौन्दर्यके घमण्डमें आकर मेरा अनादर किया! अब मेरा भी कर्त्तव्य है कि—इस पापिनीको

उसका मजा चखाऊं। दिलमें वदलेका दृढ़ संकल्पकर नारद वहांसे अमरकंका नगरीमें पहुंचे। अमरकंका पद्मराजकी राजधानी थी। वहां नारदने सब लक्षणोंसे सुन्दर द्रौपदीका एक अत्यन्त सुन्दर चित्र खींचा और उसे ले जाकर पद्मराजके साम्हने रक्खा। चित्रपट देखते ही पद्मराजका चित्त मोहित हो गया। उन्हें उस चित्रसुन्दरीके अपूर्व लावण्यसे वड़ा ही आश्चर्य हुआ, इसलिये नारदसे पूछा—महाराज, कहिये तो यह सुन्दरता किसकी है? नारदने उत्तर दिया-"राजन्! यह सुन्दर चित्र अर्जुनकी प्रेयसी द्रौपदीका है, जो साधारण पुरुषोंके लिये वड़ी ही दुर्लभ है। यह हस्तिनापुरमें रहती है। इसे पुण्यवान् पुरुष ही पा सकते हैं।" इतना कहकर नारद वहांसे चल दिये। इनके जाते ही पद्मराजको द्रौपदीकी प्राप्तिकी चिन्ताने धर दवाया। जव इसे द्रौपदीके लानेका और कोई उपाय न सूझा, तव यह विद्या साधकर उसके द्वारा रात्रिके समय शयनागारमें सोती हुई द्रौपदीको उठा लाया और अपने महलमें रखकर अपने मनोरथको सफल समझने लगा। पीछे उसपर अतिशय आसक्त होकर जव वलात्कार करने लगा, तब द्रौपदीने वहुत दुःखी होकर प्रार्थना की कि, तुम एक महीनेतक और ठहर जाओ। मैं तवतक अपने पतिकी प्रतीक्षा करूंगी। यदि इस अवधिके भीतर कोई नहीं आवे, तो फिर जैसा तुम्हें रुचे वैसा करना। द्रौपदीके कहने माफिक पद्मराजने अपना आग्रह एक महीनेके लिये छोड़ दिया।

उधर जब अर्जुन जागे और शय्या द्रौपदीसे शून्य देखी, तब उन्हें बहुत आश्चर्य तथा दुःख हुआ। इतनेमें भीमसेनादि भी जाग उठे। यह आकस्मिक घटना देखकर उन्हें भी बहुत दुःख हुआ। सबोंने द्वारकामें जाकर यह हाल श्री-कृष्णसे कह सुनाया। श्रीकृष्ण भी इस घटनाके सुननेसे बहुत दुःखित हुये। इतनेहीमें वहींपर नारद महाराजकी सवारी आ पहुंची। उन्होंने सबको सचिन्त देखकर खेदित होनेका कारण पूछा। सबोंने नारदसे कहा—महाराज, द्रौपदीको कोई हरण कर ले गया है। उसका पता अभी-तक नहीं चला। यह सुनकर नारद कहने लगे—मैंने तो द्रौपदीको धातकी द्वीपके अन्तर्गत अमरकंका नगरीमें देखी थी। जाना जाता है, उसे वहांका राजा पद्मराज ले गया है। क्यों कि द्रौपदी उसीके महलमें है। यह तुम्हें मालूम ही होगा कि, धातकी द्वीपको जानेके मार्गमें स-मुद्र पड़ता है। इतना कहकर नारद वहांसे भी रवाना हो गये। द्रौपदीकी चिन्तासे चिन्तित श्रीकृष्ण उसी स-मय सब सेना लेकर समुद्रके किनारेपर जा पहुंचे। उ-न्होंने सेनाको तो वहीं छोड़ी और आप पाण्डवोंको ले-कर रथकेद्वारा समुद्रपार होकर थोड़े ही समयमें अम-रकंका जा पहुंचे। जाकर किसीके द्वारा पद्मराजको सू-चना भेज दी, जिसको पाते ही पद्मराज सेना लेकर अ-पनी पुरीके बाहिर आया। पाण्डवोंके साथ इसकी मुठ-भेड़ हुई। भीषण युद्ध हुआ। पाण्डवोंके पराक्रमको दे-खकर पद्मराजकी सेना भाग गई। उसी समय श्रीकृष्णने

भी अपने वली होनेका परिचय देनेके लिये पृथ्वी-पर ताकतके साथ पैरकी एक ठोकर मारी, जिससे पृथ्वी कांपने लगी। लोग भयसे व्याकुल हो गये। पद्मराज वहुत डरा, सो उसी वक्त द्रौपदीके पास जाकर उसके पांव पड़ा और दीनताके साथ प्रार्थना करने लगा कि—माता, मेरी रक्षा करो। तुम वास्तवमें मेरी माता हो। उसके दीनताके वचन सुनकर द्रौपदी वोली—तुम वच तो सकोगे, परन्तु इसके लिये तुम्हें एक उपाय करना होगा। वह यह कि—तुम स्त्रीका वेप लेकर मेरे साथ चलो। पद्मराजने यह वात स्वीकार की। सो द्रौपदी और वहुतसी स्त्रियोंके साथ उसे भी लेकर अपने स्वामीसे मिलने गई। द्रौपदीको आती हुई देखकर कृष्णको वहुत सन्तोष हुआ। द्रौपदीने पांव पड़कर श्रीकृष्ण आदिका सत्कार किया और पद्मराजको श्रीकृष्णके चरणोंमें पड़ाया। श्रीकृष्णको उसके इस दीन स्त्री वेषपर वड़ी दया आई, इस लिये उन्होंने उसे क्षमा कर दिया।

इसके वाद पद्मराजने इन सवको अपने नगरमें ले जाकर खूब आदर सत्कार किया। और कहा—नाथ, आज मेरा वड़ा भारी सौभाग्य है, जो आपसरीखे महात्माओंके दर्शनसे मेरी जीवनलीला सफल हुई। पद्मराजने उस दिन आनन्दित होकर सारे शहरमें उत्सव करवाया। द्रौपदीने इतने दिनतक भोजन नहीं किया था, सो आज उसका भी सुखपूर्वक पारणा हुआ। उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। श्रीकृष्ण वहां सात दिनतक ठहरे, वाद

सब अपने २ स्थानोंकी ओर जानेके लिये रवाना हुए। मार्गमें समुद्रकी तीर भूमिमें आकर ठहरे। वहींपर श्रीकृष्णने अपना पांचजन्य (शंख) बजाया। उसके शब्दसे लोगोमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया कि, यह किसका शब्द है? वहांपर जिनभगवानकी सभामें धातकी द्वीपके नारायण बैठे हुये थे। उन्हें भी शंखध्वनिके सुननेसे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। जिनभगवानसे उन्होंने पूछा—नाथ, यह शंखका शब्द किसका किया हुआ है? भगवान बोले-जम्बूद्वीपके भारतवर्षके अन्तर्गत द्वारका नाम सुन्दर नगरी है। वहां श्रीकृष्ण नारायण राज्य करते हैं। उन्हींके शंखकी यह ध्वनि है। भगवान, श्रीकृष्ण यहां किस लिये आये हैं? और किस लिये उन्होंने यह शंखका शब्द किया है? भगवान बोले—तुम्हारे राजा पद्मराजने अर्जुनकी स्त्रीका हरण किया था, इस लिये उसके लेनेके लिये वे यहां आये हैं। यह सुनकर नारायण पद्मराजसे बहुत असन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसे राज्यसे निकाल दिया। और जिनभगवानसे प्रार्थना की कि—नाथ, मेरी बहुत इच्छा है कि-मैं श्रीकृष्णसे जाकर मिलूं। भगवानने उन्हें रोका और कहा-तुम्हें मिलना उचित नहीं है। कारण—जिनेन्द्र, चक्रवर्त्ती, बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण इन लोगोंका परस्परमें संमिलन नहीं होता है। इनके मिलनेपर भी कुछ विशेषता तो होती नहीं, फिर विना हेतु लाभ क्या होगा? इस लिये हे राजन्, तुम्हें केवल उनकी परोक्ष भेंट करके ही सन्तोष

कर लेना चाहिये। तुम्हें या तो उनकी ध्वजाके दर्शन हो सकते हैं या शंखका शब्द सुनाई पड़ सकता है। इसीको तुम्हें उनकी परोक्ष भेंट समझना चाहिये। जैसा भगवानने कहा, उसी तरह नारायणने किया। उधर श्री-कृष्णने भी जिनभगवानके वचनोंका पालन किया। फिर कुछ देर वहां और ठहरकर वे समुद्र पार होनेकी तयारी करने लगे। और बाणासुरका स्मरण करके उसकी सहायतासे शीघ्र ही पार होकर अपने द्वीपमे आ पहुंचे। रथसे नीचे उतरकर पांचों पाण्डव चलने लगे। पीछेसे द्रौपदीको लेकर श्रीकृष्ण रथपर बैठे हुये जबतक आये, तबतक पाण्डव आगे निकल गये। आगे चलकर पाण्डवोंको गंगा मिली, सो उन सब लोगोंने नावके द्वारा उससे पार हो-कर श्रीकृष्णके साथ हँसी करनेके लिये और उनके बलकी परीक्षा करनेके लिये नावको जलमें डुबो दी। श्रीकृष्ण भी पीछे २ आये और जब पाण्डवोंको वहां न देखा, तब वे रथसे उतर पड़े और उसे द्रौपदीसहित बायें हाथसे थामकर दाहिने हाथसे नदीमें तैरने लगे, सो थोड़ी ही देरमें पार हो गये। जब श्रीकृष्ण पार हो गये, तब पा-ण्डवोंने अपनी डूबी हुई नाव निकालकर दिखला दी और श्रीकृष्णचन्द्रकी मुक्तकण्ठसे स्तुति करके कहा—आपकी भी अलौकिक शक्ति है, नहीं तो इतनी बड़ी वि-शाल गंगाको कैसे पार कर सकते थे? जब पाण्डव बार २ प्रशंसा करने लगे, तब श्रीकृष्ण कुछ उद्वेगमें आकर क-हने लगे—तुम्हें मेरे साथ हँसी करते शरम भी नहीं आती!

क्या तुमने मेरे बलको अभी ही देखा है? सुनो, मैंने पहले कंसको यमलोक पहुंचाया और उसी तरह शिशुपालको भी। और जरासंध आदि जितने अच्छे २ शूर वीर राजा थे, उन्हें भी मैंने ही मारे हैं। क्या तुम ये बातें नहिं जानते हो, जो मेरे साथ हँसी करते हो। मैंने और भी कितने काम आश्चर्यजनक किये हैं—गायोंकी रक्षाके लिये गोवर्द्धन शैल उठाया, यमुनाके भीतर घुसकर नागराजको वश किया, हाथोंसे कोटिशिला उठाई, विशाल समुद्र पार किया, और अपने प्रतापसे पद्मराजाको वश करके उससे द्रौपदीका छुटकारा करवाया। इस छोटीसी नदीमात्रके तिरनेसे मेरी शक्ति क्या जानी जा सकती है? जो तुमने मेरे साथ छल किया और हँसी की। क्या तुम नहीं जानते कि, कहीं बेचारे निर्बल मृगके मारनेसे केसरीके प्रबल प्रतापका अनुमान हो सकता है? कृष्णको पाण्डवोंकी हँसी बड़ी ही बुरी लगी। जो हँसी आनन्दके लिये की गई थी, वह रंजकी कारण हो गई। बुद्धिमानोंको चाहिये कि, ऐसी हँसी कभी न करैं। इस हँसीसे बहुत दिनोंका गाढ़ प्रेम भी क्षणमात्रमे नामशेष हो जाता है। तथा बड़े २ लोगोंको भी नीचा देखना पड़ता है। बस, अब तुम्हें जहां मेरी पृथ्वी है तथा राज्य है, वहां नहीं ठहरना चाहिये। यह मेरी आज्ञा है, इसे तुम्हें पालन करनी चाहिये। श्रीकृष्णके वचन सुनते ही मानी पाण्डव इन्हें नमस्कार कर दक्षिणदिशाकी ओर चल दिये। उधर जाकर इन लोगोंने दक्षिण मथुरा व-

साई। सच है-पुण्यके माहात्म्यसे लोगोंको सभी जगह सुख होता है।

देखो, पाण्डवोंने जूवाके खेलनेसे कैसे २ दारुण दुःख भोगे और उन्हें नानादेशोंमें दुख भोगते हुए फिरना पड़ा। इससे तो यही कहना पड़ेगा कि—जूवा खेलनेके समान संसारमें कोई पाप नहीं तथा कोई प्रचण्ड शत्रु नहीं। पाण्डवोंके दुःखका कारण यही हुआ न? नहीं तो पाण्डव कितने पुण्यशाली थे।

श्रेणिक, देखो! पाण्डवसरीखे प्रबल प्रतापी लोगोंने भी जूवाके खेलनेसे कैसी २ भयंकर आपदायें सहीं? और भी नलप्रभृति कितने ही राजाओंको इस जूवाके खेलनेसे जो दुःख उठाने पड़े हैं, उन्हें कौन कह सकता है? इसीसे लोग हिंसा करने लग जाते हैं, झूठ बोलने लगते हैं, और चोरी करने लगते हैं। मनुष्योंके लिये जूवा एक बड़ा भारी दुःख ही है। बुद्धिमानोंको इस पापव्यसनका परित्याग करना चाहिये। क्यों कि इसीसे नरकवास भोगना पड़ता है और इसीसे तिर्यंच गतिमें भी अनेक भीषण २ दुःख देखने पड़ते हैं। दुःख तो बहुत और हमारी जिह्वा एक ही, फिर उसके द्वारा जूवाके सब दुःखोंका वर्णन कैसे हो सकता है? सार यही है कि, यह संसारके बढ़ानेका प्रधान हेतु है। इस लिये सुखी होनेकी इच्छा रखनेवालोंको चाहिये कि, इस बुरे व्यसनसे अपना पिण्ड छुड़ावें।

देखो, पाण्डव लोग कितने पुण्यशाली और नीतिशास्त्रके अनुभवी थे, परन्तु उन्हें जो जूवाके खेलनेकी आ-

दत पड़ गई उसके द्वारा उन लोगोंने कैसी २ कठिन आपदायें भोगीं? और देशका सर्वनाश किया। इस लिये हमारा यही उपदेश है कि,—इसे नरकनिवासका कारण समझकर नियमसे छोड़ो और यदि वास्तविक सुख चाहते हो, तो साथ ही जैनधर्मको स्वीकार करो। यह तुम्हारे सुखसमुद्रके वढ़ानेके लिये चन्द्रमा होगा।

छप्पय।

सकलपापसंकेत, आपदाहेत कुलच्छन।
कलहखेत दारिद्र देत, दीसत निज अच्छन[1]॥
गुनसमेत जस सेत, केतं रवि रोकत जैसैं[2]।
औगुन-निकर-निकेत[3], लेत लखि वुधजन ऐसैं॥
जूआ समान इहलोकमैं, आन अनीति न पेखिये।
इस विसनरायके खेलको, कौतुक हू नहिं देखिये॥
[भूधरशतक.]

इति प्रथमः परिच्छेदः।

---
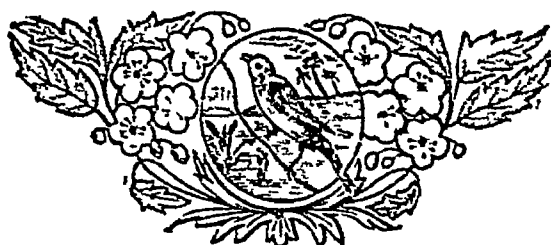
१ नेत्रोंसे। २ जैसे सूर्य ग्रहको राहूका विमान रोक देता है। ३ अवगुण समूहका घर।

दूसरी मांसव्यसन कथा।

श्रेणिक महाराजने गौतम गणधरसे पूछा—नाथ, मांसके खानेसे किसने कैसे २ दुःख भोगे हैं, सो भी कहिये। तब गणधर भगवान बोले—श्रेणिक, सुनो-जिसने मांसके खानेसे दुःख भोगे हैं उसीका उपाख्यान कहा जाता है। मांसके खानेवालोंमें एक बक नामका राजकुमार अधिक प्रसिद्ध है। उसने संसारके बढ़ानेवाले बहुत दुःख देखे हैं। श्रेणिकने कहा-महाराज, यह बक कौन था? किसका पुत्र था? इसे मांस खानेकी रुचि कैसे हुई? और इसने कौन २ दुःख भोगे? गणधर भगवान बोले—तुम्हारा पूछना बहुत ठीक है। उसके उपाख्यानसे लोगोंको बहुत कुछ शिक्षा मिलेगी, इस लिये मैं उसे संक्षेपसे कहता हूं।

इस—भारतवर्षमें मनोहरनामक देशके अन्तर्गत एक कुशाग्र नामका सुन्दर शहर था। उसमें भूपाल नामका राजा अपनी विदुषी महाराणी लक्ष्मीमती सहित राज्य करता था। लक्ष्मीमती सब गुणोंसे विभूषित थी। राजा तो जिनधर्मका परम भक्त था, परन्तु इसका पुत्र बक मांस खानेमें बड़ा ही लोलुपी था। जब प्रतिवर्ष अष्टाह्निका पर्व आता था, तब महाराज अपने सारे शहरमें बड़ा ही महोत्सव करवाते थे और यह घोषणा फिरवा देते थे कि, मेरे शहरमें कोई भी पुरुष जीवहिंसा न करने पावे। यदि कोई करेगा, तो वह राजद्रोही समझा

जावेगा। उस वक्त वकंने पितासे प्रार्थना की कि, पिताजी, मुझे मांसकी आदत पड़ गई है। मैं विना मांसके कैसे रह सकूंगा? जब उन्होंने पुत्रका अधिक आग्रह देखा, तब वे वोले—यह काम सर्वथा बुरा है। परन्तु तुम यदि नहीं रह सकते, तो देखो, एक जीवके सिवाय अधिककी हिंसा मत करना। पुत्र अपने पिताजीके वचनोंको स्वीकार कर अपने नियमानुसार रहने लगा। अर्थात् प्रतिदिन एक जीवके घातसे अपनी जीभको शान्त करने लगा। और वाकीके सव लोगोंने राजाज्ञाके अनुसार सर्वथा हिंसा करना छोड़ दिया।

अष्टाह्निका पर्वमें एक दिन रसोइयेने वकके लिये जो भोजन वनाया था, उसमें मांस भी पकाया था। रसोइया भोजनको वहींपर रखकर कुछ कामके लिये वाहर चला गया। इतनेमें किसी विल्लीने आकर मांस खा लिया। जब रसोइया आया और देखा कि, विल्ली मांस खा गई है, तव उसे वड़ी चिन्ता हुई। अव क्या करूं? किधर जाऊं? मांसके वदलेमें उसे और क्या उत्तम वस्तु खिलाऊंगा? राजपुत्र मांसका वड़ा ही प्रेमी है। वह यह हाल देखकर नियमसे मुझे दण्ड देगा। ऐसा विचारकर रसोइया शहरके वाहिर गया और वहां किसी मरे हुये वच्चेको पृथ्वीमें गढ़ा हुआ देख उखाड़ लाया और मांसलोलुपी राजकुमारके लिये उसने उसे ही पकाकर रख दिया। राजकुमार जव भोजनके लिये आया, तव रसोइयेने उसकी वहुत भक्ति की। जव राजपुत्र भोजनके

लिये बैठ गया, तब रसोइयेने पहिले तो नानाप्रकारके व्यञ्जन परोसे और पीछे वह मांस भी परोस दिया। आजके मांसका स्वाद उसे बहुत अच्छा लगा, इस लिये उसने रसोइयेसे पूछा—ठीक २ बता कि यह मांस किसका है? मैंने तो आजतक कभी ऐसा मांस नहीं खाया था। रसोइयेने कहा—कुमार, यह मांस मयूरका है। राजपुत्रने फिर कहा—क्या मैंने कभी मयूरका मांस नहीं खाया? जो तू ऐसा कहता है। मयूरके मांसमें और इस मांसमें तो बहुत फर्क है। मैंने तो न कभी ऐसा स्वादिष्ट मांस देखा था और न कभी सुना था? मैं तुझे क्षमा करता हूं। ठीक २ कह दे, कि यह स्वादिष्ट मांस किसका है? रसोइया बोला—कुमार, मैंने ठीक हाल भयसे नहीं कहा था। किन्तु जब तुम क्षमा कर चुके हो, तो लो मैं कहता हूं—यह मांस मनुष्यका है। सुनकर कुमार बोला—देख, आजसे मेरे सन्तोषार्थ जैसे हो सके, वैसे मनुष्यका ही मांस लाकर बनाया कर। इसके लिये जितना द्रव्य चाहिये, उतना मैं दिया करूंगा। रसोइयेने सुनकर विचारा कि, मैं रोज २ मनुष्यमांस कैसे ला सकूंगा? उसने और कोई उपाय न देखकर बहुतसे चने, लड्डू, सिंघाड़े, छुहारे तथा नारियल खरीदे और उन्हें लेकर वह सांयकालके समय कुछ अन्धेरा हो जानेपर जहां छोटे २ बच्चे खेला करते थे, वहां जाने लगा और उक्त चीजें बालकोंको देने लगा। बेचारे बच्चे लोभके मारे उसके पास आने लगे। सच है, सब मोहोंमें स्वादका मोह बड़ा ही जबर्दस्त है। इस त-

रह जब बालक रसोइयेसे हिल गये, तब वह उनमेंसे किसी एकको अवसर पाकर पकड़ लेता और गला दबाकर तथा वस्त्रमें छुपाकर घर ले आता, और राजकुमारको उसके मांससे प्रसन्न करता। ऐसा करते २ बहुत काल बीत गया। इतनेहीमें भूपाल जिनदीक्षासे दीक्षित होकर तपोवन चले गये और राज्याधिकार बकको मिल गया। वह स्वच्छन्द होकर राज्य करने लगा।

इसी तरह समय बहुत बीत गया। बालक दिनोंदिन घटने लगे। लोगोंको बड़ा ही भय हुआ। सबने मिलकर विचारा कि, यह बात क्या है? इस विषयका पता लगानेके लिये कि बच्चे कहां जाते हैं बहुतसे लोग गुप्तरीतिसे शोध लगाने लगे। एक दिन दुष्ट रसोइया बालकोंको कुछ खानेको देकर ज्यों ही उनमेंसे एकको पकड़कर ले जाने लगा, त्यों ही लोगोंने दौड़कर उसका गला पकड़ लिया। पकड़ते ही रसोइयेने अधमरे बच्चेको नीचे डाल दिया। बालकको देखते ही लोगोंका क्रोध उमड़ आया। उन्होंने उस वक्त उसकी बुरी तरह पत्थर और घूसोंसे खबर ली। जब उसपर अच्छी मार पड़ी और पूछा गया, तब उसने ठीक २ जो बात थी, वह कह दी। लोगोंको राजाकी अनीति देखकर बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने विचार किया कि—अब हमें क्या कर्त्तव्य है? यह पापी राजा तो प्रतिदिन हमारे बालबच्चोंको खाता है और जब इसको लत पड़ गई है, तब यह बच्चोंके मांसको छोड़ेगा भी नहीं। इससे तो यही उचित है कि—हम लो-

गोंको अब एक दिन भी यहां नहीं रहना चाहिये। अरे! वह राजा भला ही क्या कर सकेगा, जो हमारी ही सन्तानोंका खानेवाला है? और जब बालबच्चे ही न रहेंगे, तब हमारा जीवन ही किस कामका है? देखो, लोग केवल बालकोंहीके लिये तो देशविदेशतक जानेमें आगा पीछा नहीं करते हैं? बालक ही तो घरके भूषण कहे जाते हैं। फिर जहां बालकोंका ही नाश होता है, वहां हम रहकर क्या करेंगे? धन, धान्य आदि जितनी वस्तुएं संगृहीत की जाती हैं, वे सब बच्चोंके ही लिये की जाती हैं। ऐसी अवस्थामें भी हम लोग यहीं रहेंगे, तो नियमसे हमारा सर्वनाश होगा। वह राजा ही किस कामका है, जो बच्चोंके साथ इस तरह निर्दय व्यवहार करता है? अन्तमें सब लोगोंने विचारकर यह निश्चय किया कि—यह राजा बड़ा ही दुष्ट और पापी है, सो इसे ही देशसे निकलवा देना चाहिये। हम लोग ऐसे नृशंस राजाको कैसे रख सकते हैं? और क्योंकर उसकी सेवा कर सकते हैं? विचार करते २ प्रातःकाल हो आया। उजेला होते ही सब महाजन लोग मिलकर राजदरबारमें गये। राजा राज्यसिंहासनपर बैठा हुआ था। उसे सब लोगोंने मिलकर सिंहासनसे उतार दिया और उसके किसी गोत्रीय पुरुषको राज्य सिंहासनपर बैठा दिया। सच है—बहुतोंकी सम्मति सभीको स्वीकार करनी पड़ती है। वही राजा है और वही देव है जिसे बड़े लोग मानते हैं और जब बड़े लोग ही रुष्ट हो जाते हैं, तो स-

मझो कि उसका दैव भी उससे पराङ्मुख है। जो नीति-पूर्वक चलनेवाले हैं, उनके लिये सब ही सज्जन हैं और जो अनीति करते हैं, उनके लिये भला भी बुरा हो जाता है। इस लिये बुद्धिमानोंको कभी अच्छे मार्गका उलंघन नहीं करना चाहिये। क्यों कि खोटे रास्तेसे चलनेवा-लोंको स्वप्नमें भी सुख नहीं मिल सकता है।

बक राज्यभ्रष्ट होकर दुःखसे दिन बिताने लगा, तौ भी उसकी पापवासना न बुझी। देखो, जो पापके उदयसे पहलेहीसे मनुष्य मांस खानेवाला है, वह अब ऐसे कठिन व्यसनसे अपना पीछा कैसे छुड़ा सकेगा? ठीक यही हालत बककी हुई। वह शहरके बाहिर वनमें रहकर स्मशानभूमिमें घूमने लगा और मुर्दोंका मांस खा २ कर दिन विताने लगा। लोगोंने इसका शहरमें आना बंद कर दिया। और इसीके भयसे लोगोंने शहरके बाहर निकलनातक छोड़ दिया। लोग इसे राक्षस, दैत्य, और पिशाच, समझने लगे। कुछ दिनों बाद यह नंगा होकर वनमें रहने लगा और मनुष्योंके मांससे उदरपूर्त्ति करने लगा। सच है—जो लोग पापमें रक्तचित्त होते हैं, उन्हें दया तथा ग्लानि कहां? बक लोगोंसे घृणा किया हुआ पृथ्वीमें इच्छानुसार घूमने लगा। इसी तरह इसे ग्रामोंमें घूमते २ बहुत दिन बीत गये। यह यहांतक क्रूर हो गया कि, जो जीव इसके सामने आ जाता यह उसे जीता न छोड़ता था। ठीक तो है, खोटे मार्गमें जाने-वालोंको शंका तथा विचार कहां रहता है?

एक दिन वनमें घूमते हुये इसे वसुदेवने देखा। यद्यपि वसुदेव थे अकेले, तो भी वे निर्भय होकर इससे लड़े और उन्होंने इसे जल्दीसे मार गिराया। वक मरकर सातवें नरक गया, जहां अत्यन्त दारुण दुःख सहने पड़ते हैं। वहां इ-सने पापके फलसे बड़े २ भीषण दुःख भोगे। यद्यपि दुःख नरकमात्रमें भोगने पड़ते हैं, परन्तु सातवें नरकमें जैसे दुःख हैं, वैसे कहीं नहीं हैं। वास्तवमें यह पापका फल है, जो वहां कभी सुखका लेश नहीं मिलता। नारकी जब यह कहता है कि—मैं प्यासकी पीड़ासे मरा जाता हूं, तब असुर लोग उसीके शरीरसे खून निकाल २ कर पिलाने लगते हैं। फिर वह कहता है, नहीं नहीं मुझे प्यास नहीं है तो भी ये लोग इसका पीछा नहीं छोड़ते हैं। और क-हते हैं—अरे पापी! दुराचारी!! तूने तो दूसरोंका मांस बहुत खाया है अब अपने ही शरीरके मांसको क्यों नहीं खाता? नरकमें जीवकी बड़ी ही दुर्दशा की जाती है। वह अग्निमें पकाया जाता है, घानीमें तिलकी तरह पील दिया जाता है, आगमें जला दिया जाता है। जबतक उसकी आयु पूरी नहीं होती, तबतक ऐसी २ ही अगणित दारुण यातनायें उसे निरन्तर भोगनी पड़ती हैं।

बुद्धिमानो! देखा न? मांसके खानेका फल जिसे वक राजपुत्रने भोगा है। अब तो तुम्हें उचित है कि तुम अभी ही मांसका खाना छोड़ दो। आप जानते हैं—मांस न तो वृक्षोंसे पैदा होता है, न पृथ्वीमें ऊगता है, और न पर्वतमालाओंसे उत्पन्न होता है। किन्तु नियमसे निरा-

पराध जीवोंके मारनेसे इसकी पैदायश है। इसलिये उच्छिष्ट तथा मूत्र विष्टा आदिसे मिले हुये मांससे चित्तको हटाना चाहिये। देखो! मांस वकरे, शूकर, हिरण, मच्छी आदिके शरीरके घात होनेसे पैदा होता है। इसकी दुर्गन्धि मात्रसे जव उल्टी हो जाती है तव उत्तम लोग उसे कैसे ग्रहण करेंगे? इसका तो स्पर्शतक भी महा बुरा है। इसलिये बुद्धिमानो! मांसके त्यागका नियम करो। मासका खाना यहां भी घृणा पैदा करता है और परलोकमें भी नरकमें लेजानेका कारण है।

देखो! कहां तो वकका उत्तम राज्य कुल और कहां मनुष्योंके मासका खाना? इसीसे उसे राज्यसे पतित होना पड़ा और अन्तमें नरक निवास करना पड़ा। इसी तरह और भी जो कोई मांसका भक्षण करेगा, उसके लिये वकका चरित्र खासा उदाहरण है। मांसके दोषोंको कोई कहांतक गिना सकता है, जिसका नाम मात्र लेनेसे उत्तम पुरुष भोजनतक छोड़ देते हैं।

सारांश यह कि—मांस निंद्य है, पापका कारण है, पवित्रताका सर्वनाश करनेवाला है, दुःखका मूल है और दोनों लोकमें बुराईका हेतु है इसलिये इसके परिहारपूर्वक बुद्धिमानोंको—अहिंसा धर्मका अपूर्व प्रतिपादन करनेवाला जिनधर्म स्वीकार करना श्रेय है। यही संसार दुःखसे दुःखित जीवोंके लिये सुखका कारण है।

छप्पय ।

जंगम जीको नाश होय, तव मांस कहावै ।
सपरस आकृति नाम, गन्ध उर घिन उपजावै ॥
नरकजोग निरदई, खाहिं नर नीच अधरमी ।
नाम लेत तज देत, अशन उत्तम कुल करमी ॥
यह अशुचि मूल सबतैं बुरो, कृमिकुल रास निवास नित ।
आमिष अभक्ष याको सदा, बरजो दोष दयाल चित ॥

[भूधरशतक]

इति द्वितीय परिच्छेद ।

तीसरी मदिराव्यसन कथा ।

भगवान गणधर वोले–श्रेणिक! अव तुम्हें मदिरा पीनेवालोंका उपाख्यान सुनाया जाता है यह भी लोगोंके लिये सुखका हेतु है । मदिरा पीनेसे यादवोंने अतिशय दुःख भोगे हैं । तुम्हें उनका चरित्र ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये । श्रेणिकने कहा–नाथ! आप कहें, मैं सुननेको तयार हूं ।

गौतम भगवान यों कहने लगे–जम्बूद्वीप–भारतवर्ष–कौशलदेशके अन्तर्गत सौरपुर नामक सुन्दर नगर था । वहां महाराजा समुद्रविजय राज्य करते थे । समुद्रविजय यादवोंमें प्रधान गिने जाते थे । इनके छोटे भाईका नाम था वसुदेव । वसुदेव पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे ।

जिस समय मथुराका राजा कंस वसुदेवके साथ अपनी वहिन देवकीका व्याह करके उन्हें अपनी राजधानीमें लिवा ले गया था और सुखपूर्वक राज्य करता था, उस समय एक दिन अतिमुक्तक नामके मुनि जो कि कंसके छोटे भाई थे आहारके लिये आये । उन्हें आते हुये देखकर कंसकी जीवंयशा नामक प्रधान राणी उनकी हंसी करने लगी और देवकीका मलिन वस्त्र दिखाकर वोली–जिसे तुमने वालावस्थासे ही छोड़ रक्खी है उसीका यह वस्त्र है । वस्त्र देखकर मुनि क्रोधित होकर कहने लगे–मूर्ख! तू हँसती क्यों है? तुझे तो रोना चाहिये । देख! इसीके गर्भसे जो वालक पैदा होगा, उसके द्वारा

तेरे पिता और स्वामीकी मृत्यु होगी । इतना कहकर मुनि अन्तराय हो जानेके कारण वापिस लौट गये । इधर मुनिके कहनेसे जीवंयशाको बहुत दुःख हुआ । इतनेमें कंस भोजनके लिये आया और प्राणप्यारीको रोती हुई देखकर बोला—सुन्दरि! आज किस लिये रो रही हो? कहो तो क्या किसीने तुम्हें कुछ दुःख पहुंचाया है? जीवंयशा बोली—नाथ, और तो कुछ नहीं किन्तु यही एक प्रबल दुःखका कारण है कि—आज आहारके लिये अतिमुक्तक मुनि आये थे, सो मैंने उन्हें देवकीका वस्त्र दिखला दिया। उसे देखकर मुनिने क्रोधमें आकर मुझसे कहा कि—मूर्खे! तुझे तो शोक करना चाहिये हँसती क्यों है? क्योंकि—इसीके गर्भसे पैदा होनेवालेके द्वारा तेरे पति और पिताकी मृत्यु होगी । बस, यही मेरे दुःखिनी होनेका कारण है । कान्ताकी दुःख कहानी सुनकर कंस भी चिन्तासे व्याकुल हुआ । सच है—सब भयोंसे मृत्युका भय बड़ा होता है । कुछ विचारकर कंस वसुदेवके घरपर गया । वसुदेवने उसका सत्कार किया । कंस पहिले तो कपटभावसे इधर उधरकी बातें करने लगा, पीछे अवसर पाकर वसुदेवसे बोला—आप सब विद्याओंमें मेरे गुरु हैं । इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं किन्तु मुझे आपसे कुछ मांगना है । यदि आप कृपा करें तो बहुत अच्छा हो । वसुदेव बोले—ऐसा तुम क्यों कहते हो? क्या कभी मैंने तुम्हारे कहनेका निरादर किया है? मैंने आजतक कभी तुम्हारा कहना नहीं फेरा, फिर किस लिये इतना

आग्रह करते हो ? कंस वोला यदि ऐसा है तो मुझे वचन दे दीजिये मैं प्रार्थना करूं। जव वसुदेव वचन दे चुके, तव कंस वोला आगे मेरी वहिनकी प्रसूति मेरे घरपर ही हुआ करे, यह आज्ञा दीजिये। उत्तरमें वसुदेवने कहा—अस्तु यह तुम्हारी वहिन है, इसकी प्रसूति तुम्हारे घर पर होने में कोई हर्ज नहीं। कंस भी यह कह कर कि, अच्छी वात है घर चला गया और अपने जीवनको कृतार्थ मानने लगा। उसवक्त वसुदेवके किसी हितूने कंसके इतने आग्रहका कारण उन्हें वता दिया। सुनकर वसुदेव और देवकी वहुत दुःखी हुये। वसुदेव उसीवक्त रथमें वैठकर देवकीके साथ वनमें गये और मुनिराजको नमस्कार कर उनके समीप वैठ गये मुनिराजके द्वारा धर्मका उपदेश सुना। इसकेवाद—उन्होंने हाथ जोड़कर अपने चित्तके दुःखी होनेका कारण कहा—विभो ! आपने जीवंयशाके सामने जो २ वातें कहीं थीं, वे मुझे भी सुना दी जांय, तो वहुत दया हो। क्योंकि आपका कहना कभी झूठ नहीं होता।

मुनिराज वोले—राजन् ! तुम्हारी भार्याके तीन पुत्र-युगल उत्पन्न होंगे और जव २ वे उत्पन्न होंगे, तव २ कौशाम्वी नगरीमें वृषभदत्त सेठकी स्त्रीके भी (जो इनकी पूर्व जन्मकी माता है) तीन पुत्र युगल उत्पन्न होंगे परन्तु वे मरे हुए होंगे। सो देवता इन पुत्रोंका तत्काल ही स्थानपरिवर्त्तन कर दिया करेंगे अर्थात् तुम्हारी भार्याके युगलोंको तो वृषभदत्तके यहां रख आवेंगे और

मरे हुये युगलोंको तुम्हारी भार्याके समीप लाकर रख जावेंगे। कारण तुम्हारे जो पुत्र होंगे, वे नियमसे चरम-शरीरी (उसी भवसे मोक्ष जाने वाले) होंगे । इसलिये तुम कुछ भी दुःख मत करो। और जो चौथी वार गर्भ होगा, उससे शत्रु कुलका नाश करने वाला सातवां जनार्दन (श्रीकृष्ण) होगा। निश्चय समझो कि, उसीके द्वारा जरासिन्ध और कंसका सर्वनाश होगा। वह प्रबल प्रतापी तीन खण्डका स्वामी होगा। वसुदेव मुनि-राजके वचनोंसे वहुत सन्तुष्ट हुये । और मुनिराजको नमस्कार करके देवकीके साथ २ अपने घर लौट आये। यहींसे कंस और वसुदेव अपने २ चित्तमें अनवन रखने लगे, परन्तु वाहिर इस तरह रहने लगे जैसे ऊपरसे सुन्दर वेर हो। कुछ काल वीतनेपर देवकी गर्भवती हुई। जव गर्भ सात महीनेका हो चुका, तव उसे कंस, आकर अपने घर लिवा ले आया। पूर्णदिन हो जानेपर जब देवकी प्रसवोन्मुखी हुई, तव कंसने वड़ी ही सावधानीसे उसकी रक्षा की। प्रसूतिके दिन इधर तो देवकीके दो सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए, उधर देव उन्हें ले जाकर वृषभ-दत्तके यहां रख आये और उसके उसी समय उत्पन्न हुए दो मृत पुत्रोंको देवकीके पास लाकर रख गये। जव कंसको भी खवर लगी कि देवकीके पुत्र हुए हैं, तव वह शीघ्र ही आया और वड़ी ही निर्दयतासे उन मरे हुए वालकोंको भी उसने पांव पकड़कर पछाड़ दिये। कंसकी यह निर्दय-ता देखकर देवकी और वसुदेव वड़े ही दुःखी हुये।

देवकी कुछ दिन तक और भी कंसके यहा ठहरी, बाद अपने घरपर आगई। आगे निर्दयी कंसने दूसरे और तीसरे युगलोंकी भी यही हालत की। यह वड़ा ही अच्छा हुआ, जो देवता उनका पहलेहीसे स्थान परिवर्तन कर देते थे। यद्यपि देवकीके पुत्र चिरञ्जीव थे तौ भी उसे उनके वियोगका वड़ा ही दुःख होता था। पर क्या करे, विवश थी। कंससे छुपानेके लिये उसे ऐसा करना पड़ता था। अस्तु, वसुदेवने भी अपने वचनोंके पालन करनेमें किसी तरह की आनाकानी न की।

कुछ समय वीत जानेपर एकदिन देवकी सुखपूर्वक सोती हुई थी कि उसे रात्रिके अन्तिम प्रहरमें केसरी, गजराज, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, समुद्र, कमल और भवन-वासी देवोंका स्थान ये आठ वातें स्वप्नमें दीख पड़ीं। उन्हें देखकर वह जाग उठी और प्रातःकाल होते ही अपने स्वामीके पास गई और वहां उनसे उसने रात्रिमें देखे हुये स्वप्नोंका सव हाल ज्यों का त्यों कह सुनाया। सुनकर वसुदेवने उसका फल यों कहा देवि, आज ही रात्रिमें तेरे गर्भमें–शत्रुकुलके नाश करने वाले नवमें वासुदेवका अवतार हुआ है। वह पिताका दुःख दूर करनेवाला होगा। इस फलके सुननेसे देवकीको वहुत ही हर्ष हुआ, परन्तु साथ ही उसे चिन्ता भी वड़ी भारी हो गई। उसने स्वामीसे कहा—नाथ! आपने यह नहीं कहा कि यह पुत्र जी कैसे सकेगा? उत्तरमें वसुदेवने यह कहकर उसके चित्तका सन्तोष कर दिया कि— इस वालककी भी देव

रक्षा करेंगे, तुझे दुःखिनी न होनी चाहिये। क्योंकि यह पुत्र वड़ा ही भाग्यशाली होगा। गर्भ धीरे २ बढ़ने लगा। देवकीने दोहदमें सिंहासनपर बैठकर अपना मुख खड्गमें देखा। यह गर्भ पांच ही महीनेका हुआ था कि—कंस आकर देवकीको अपने घर लिवा लेगया और प्रतिदिन वड़ी ही सावधानीसे उसकी रक्षा करने लगा। भादों महीनेके कृष्णपक्षकी आठेंको जब कि मूसलधार पानी वरस रहा था, और रोहिणी नक्षत्रका योग था, देवकीने सातवें महीनेमें शुभ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर पुत्ररत्न प्रसव किया। उस समय देवकीने वड़ी ही हुशियारी कर गुप्त-रीतिसे अपनी अनुचरीको वसुदेवके पास भेजी। उसने जाकर वसुदेवसे कहा—महाराज, आज आपके पुत्ररत्न हुआ है, किसी तरह उसकी रक्षा करनी चाहिये। यह सुनते ही वसुदेव प्रसूतिगृहमें गये और वड़ी ही सावधानी-से पुत्रको लेकर छिपे हुये निकल गये। उनके साथमें रक्षाके लिये वलभद्र भी थे। ये दोनों गलियोंमें इस ढङ्गसे गये, कि इनके पांवोंकी आहट तक भी किसीने न सुनी। कुछ दूरीपर दरवाजा लगा हुआ मिला, परन्तु पुत्रके पांव लगनेसे उसवक्त वह भी खुल गया। आगे वालकके नाकमें जलविन्दुके चलेजानेसे उसे छींक आगई और उसे वहीं पर कारागृहमें पड़े हुये उग्रसेनने सुन ली। सुनते ही वच्चेको उन्होंने शुभाशीर्वाद दिया कि—चिरञ्जीव! वसुदेव सुनकर झटसे उग्रसेनके पास पहुंचे और उन्होंने प्रार्थना की कि—महाराज, यह हाल छुपा रहना चाहिये। आप किसीसे

भी न कहैं। उग्रसेनने वसुदेवसे बहुत प्रेमके साथमें कहा- तुम इसकी चिन्ता न करो। इस सुन्दर बालकको गुप्तरीतिसे जल्दी लेजाओ, जहां इसकी ठीक २ सुरक्षा हो सके। कारण इसीके द्वारा मैं बन्धनसे छूट सकूंगा। वसुदेव बच्चेको लेकर बाहिर निकले, उस वक्त जल बरस रहा था, सो उससे बचनेके लिये बलभद्रने ऊपरसे छत्री तान दी। इस तरह वसुदेव बलभद्रके साथ बच्चेको लिये हुए नदीके किनारेपर पहुंचे देखा कि— यमुना किनारोंको तोड़ती वेगके साथ बह रही है उसका पूर आ रहा है। परन्तु ज्यों ही इन्होंने नदीमें पैर दिये, त्यों ही उस प्रतापी पुत्रके पुण्य प्रभावसे यमुनाका जल घुटनों हो गया और तब ये कुशलतापूर्वक दूसरी पार वृन्दावन जा पहुँचे जहां नन्द नामका ग्वाला रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यशोदा था। नन्दने इन्हें आते हुये देखकर विचारा कि—आज किसलिये ये पूज्य महात्मा मेरे घरपर आये हैं? और समीप आनेपर पूछा कि, आप किसलिये पधारे हैं? वसुदेवने अपनी दुःखभरी जितनी कहानी थी, सब कह सुनाई। देखो! कंसने मेरे छह पुत्र पहले मार डाले हैं, यह सातवां पुत्र है। मैं बड़े भारी पुण्यसे इसे यहां तक ला पायाहूं। सो अब जिसतरह हो सके, तुम इस बच्चेकी पालना करना। परन्तु ध्यान रहै, इस बातको कंस न जान ले। नहीं तो करे करायेपर सब पानी फिर-जायगा? नन्दने कहा—नाथ, मुझे कहना यह है कि आज ही मेरे यहां पुत्री उत्पन्न हुई है। सो उसे तो आप

ले जाकर देवकीको दे दीजिये और इस बालकको मेरे घर छोड़ जाइये। इसे कंस किसी तरह जान न सकेगा, आप निश्चिन्त रहैं। कंस पुत्रीको देखकर किसी तरहका विघ्न भी नहीं करेगा। और यदि करेगा, तो उससे हमारी क्या हानि है? आप यह न विचारें कि, मेरी पुत्रीकी नाहक जान जायगी। यदि यह पुत्र चिरंजीव रहेगा, तो मैं समझूंगा, मेरे बहुतसी पुत्रियां हैं।

नन्दकी सहृदयता देखकर वसुदेवको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने बच्चेको उसे सौंपकर तथा उसकी पुत्रीको आप लेकर शीघ्र ही लौट आये और उस कन्याको देवकीके पास लिटा कर अपने घर चले आये। पुत्रकी चिन्ताका भार निकल जानेसे इस दिन उन्हें खूब निद्रा आई। उधर स्त्रियां जगीं और पुत्री हुई जानकर स्वामीके पास जाकर बोलीं कि नाथ, देवकीके अबकी बार सुन्दर कन्या हुई है। यह सुनते ही कंसको बड़ा क्रोध आया। वह उसी वक्त प्रसूतिघरमें गया और जाकर देखता है तो वास्तवमें पुत्री हुई है। उसवक्त उसने विचार किया कि—इसी कन्याके द्वारा मेरी जीवनयात्रा पूरी होगी अथवा इसके पतिके द्वारा? यदि इसका पति मेरा घातक होगा, तो मैं ऐसा उपाय क्यों न करूं जिससे इसे कोई चाहे ही नहीं। यही विचारकर पापी कंसने बेचारी कन्याकी नाक काट ली और इसके पश्चात् कन्या देवकीको सौंपकर वह अपने स्थानपर चला गया। प्रसूतिका समय बीत जानेपर देवकी भी अपने घर चली

आई। इधर वालक तो दिनोंदिन गोकुलमें बढ़ने लगा और उधर कंसके घरमें सुखकी इति श्रीके कारण तथा कुलके भावी विनाश सूचक उत्पात होने लगे। उनसे घबराकर कंसने नैमित्तिक लोगोंसे पूछा—मेरे घरमें ये उत्पात क्यों होते हैं? ज्योतिषी बोले-वनमें कोई तुम्हारा शत्रु वढ़ रहा है। उसके द्वारा तुम्हारी जीवनलीला पूरी होगी। यही कारण उत्पात होनेका है। ज्योतिषी लोगोंके वचनोंको सुनकर कंसको वड़ी ही चिन्ता हुई। उसने अपनी रक्षाका और कोई उपाय न देखकर पूर्व जन्मके मित्र देवोंका आराधन करना आरंभ किया। जव वे प्रत्यक्ष हुए, तव उनमेंसे एकको आज्ञा दी कि, तुम किसी तरह मेरे शत्रुको मारो। आज्ञानुसार वह पूतनाका वेष धारण कर नन्दके यहां आया और अपने स्तनोंपर विष लगा कर वालकको दूध पिलाने लगा। बच्चेने उसकी बुरी वासना जान ली, सो दूध पीनेके छलसे उसने उसके स्तनोंको ही काट लिये। कपटवेषी पूतना चिल्लाकर आकाशकी ओर भागी। दूसरे दिन अन्यदेव उदूखल, शाल्मली और शंकर आदि कितने ही वेष धारण करके आये, किन्तु भाग्यशाली बालकका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके।

एकदिन कंस श्रीकृष्णको देखनेके लिये व्यग्रचित्त होकर भयसे डरता २ स्वयं वनमें आया। कंसको आता हुआ देखकर यशोदाने बड़ी बुद्धिमानीसे श्रीकृष्णको गायें चरानेके छलसे वनमें भेज दिया। जब कंसने

आकर देखा कि श्रीकृष्ण वहां नहीं है, तव उसने अपनी विद्यासे पूछा कि, श्रीकृष्ण इस वक्त कहां है। उत्तरमें विद्याने कहा कि वनमें है। कंसने वहां अपना जाना असंभव समझकर देवताओंको भेजे और कह दिया, कि, देखते ही उसे मार डालना। आज्ञा पाते ही दैत्य दौड़े गये और आकाशसे पत्थरोंकी भीषणवर्षा करने लगे। इससे गायोंको और ग्वालोंको वड़ा ही कष्ट पहुंचा। वे अपनी रक्षाके लिये इधर उधर भागने लगे। कृष्णने जव यह हाल देखा, तो उन्होंने सारे गोवर्द्धन पर्वतको वायें हाथसे उठा लिया। श्रीकृष्णके द्वारा पर्वतका उठाया जाना देखकर दैत्य भागे और कंसके पास जाकर कृष्णकी सव लीला सुनाने लगे। सुनते ही कंस डरा और जल्दीसे अपने महलोंमें चला गया। उपद्रव शान्त हुये जानकर श्रीकृष्ण भी स्वच्छन्द होकर क्रीड़ा करने लगे।

श्रीकृष्णके पढ़ानेका भार वलभद्रके उपर था। वे ही प्रतिदिन उन्हें पढ़ाया करते थे। कृष्णके वलकी वात जव वलभद्र अपने कुटुम्वियोंको सुनाते थे, तव उसे सुनकर उन्हें वड़ा ही हर्ष होता था। देवकी जव पुत्रकी प्रशंसा सुनती तो उसे भी उसके देखनेकी वड़ी ही उत्कण्ठा होती। वह वलभद्रको सदा कहा करती थी कि कभी मुझे भी श्री-कृष्णके दर्शन कराना। एक दिन वलदेव देवकीको अष्टमीका प्रोपध करवाकर पूजाके वहानेसे गोकुलमें लिवा लेगये। वहां जिन भगवानकी पूजा करके देवकीने गोकुलकी शोभा वड़े ही सुन्दर रूपमें देखी। कहीं गायके वछड़ोंकी

क्रीड़ा, कहीं गायोंका रंभाना, कहीं वासुरी वजाते हुये गवालोंका नृत्य, कहीं मेघ सरीखी ध्वनि करता हुआ दही विलोनेका शब्द, कहीं गोपियोंका नवनीतको गरम करना, कहीं गायोंके दूध निकालनेके समयका धाराशब्द, कहीं दूधके आकण्ठ भरे हुये वहुतसे कलश, कहीं रास्तेमें खड़े हुये गायके वछड़ोंका शब्द और कहीं वैलोंका दँहकना इसीतरह गोकुलकी शोभा देखकर देवकी वहुत ही प्रसन्न हुई। और साथ ही हृदयमें खेद भी करने लगी कि मुझसे तो ये गोपियें ही वहुत भाग्यवती हैं जो पुत्रपौत्रका आनन्द देखकर खुशीके साथ दिन विताती हैं।

यशोदा देवकीको आई हुई देखकर वहुत खुशी हुई और भक्तिपूर्वक उसके चरणोंको नमस्कार कर उसके बैठनेके लिये आसन लाई और दोनों हाथ जोड़कर बोली देवि, आज तेरे आनेसे मेरा सारा गोकुल पावन हुआ। मैं आज सनाथ हुई तू मेरी माता है और आजसे तू मुझे अपनी दासी समझ। यह सुनकर देवकी विनयवती यशोदासे बोली—यशोदा मैंने सुना है कि, तुझे वड़े प्रतापी पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है। सो क्या तू मुझे अपने पुत्रके दर्शन करावैगी? यशोदा जल्दीसे जाकर पुत्रको ले आई और उसे देवकीके सामने वैठा दिया। उस समय पुत्रकी शोभा वड़ी ही सुन्दर थी—उसका गुवालोंकासा वेष, सिरपर मयूरपिच्छ और मुकुट, वंशीका वजाना और सिन्दूरमय शरीर मनको मुग्ध किये देता था। उस वक्त श्रीकृष्णके साथ वहुतसे गुवाल वाल भी थे। कृष्ण

आते ही देवकीके चरणोंको नमस्कार कर उसके सामने बैठ गया। देवकी पुत्रको गोदमें बैठाकर उसके मुखकी शोभाको अतृप्त होकर वार २ देखने लगी।

इसके पश्चात् वह यशोदासे बोली—यशोदा, तू बड़ी ही सौभाग्यवती हैं, जो तेरे यहां ऐसा पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि, तू इस पुत्रके पुण्यसे वहुत ही सुख भोगेगी। यह कहते २ पुत्रप्रेमसे देवकीके स्तनोंसे दूध झरने लगा और उसी दूधसे उसकी सारी कंचुकी भीग गई। वलभद्रको देवकीके स्तनोंसे दूध झरता हुआ देखनेसे वड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह यह सोचकर कि, इसकी यह हालत कोई दुष्ट कंससे जाकर न कह दे, जल्दी दूधका भरा हुआ घड़ा उठा लाया और उससे उसने देवकीको स्नान करादिया। यशोदा बोली—माता, गोकुलमें तेरे योग्य ऐसी कोई उत्तम वस्तु नहीं हैं जिससे तेरा सत्कार करती, इस लिये दूध ही से तुझे स्नान कराना पड़ा है। इसके वाद वलभद्रजी देवकीको रथमें बैठाकर अपने घरपर चले गये। देवकीने जातेवक्त पुत्रको आशीर्वाद दिया कि—प्यारे! गायोंका पालन करते रहना, तू हमारा भी गोपाल है। नन्दनन्दन, प्रतिदिन तेरी वृद्धि हो और तेरे माता पिता सदा सुखी रहें। इतना कह कर देवकी अपने घर चली आई। सच है, अपने जाये पुत्रके मुखका दर्शन किसे आनन्दित नहीं करता?

कृष्ण गोकुलमें रहकर सुखपूर्वक खेल कूदमें दिन विताने लगा। वलभद्र उसे प्रतिदिन सुन्दर २

भूषण वस्त्रादिसे भूषित किया करते थे। श्रीकृष्ण था तो बालक ही? सो गोपियोंके साथ खूब ही लीला किया किया करता था। कभी उनके वस्त्र खींच लेता था. और कभी उनका दूध दही ढोल दिया करता था। उधर विचारे कंसको सुख नहीं। उसके लिये रात्रिमें निद्रा लेना तक मुश्किल होगया। भूख पियास जाती रही। वह बड़े ही संकटमें पड़ा। परन्तु शत्रुका पता उसे तब भी नहीं लगा। निदान उसने दूसरा उपाय सोचकर सब गुवालोंको बुलवाये और उन्हें आज्ञा दी कि—तुम लोग जाकर यमुना सरोवरके कमल लेआओ। उन गुवालोंमें श्रीकृष्ण भी था सो वह झटसे बोल उठा कि—महाराज, कमलतो मंगवाये गये परन्तु यह नहीं कहा कि—यमुना सरोवर किस देशमें है। कंस क्रोधमें आकर बोला—तुझे इससे मतलब? जो कार्य दिया गया है उसे पूरा कर। उसके कहनेको स्वीकार कर श्रीकृष्ण वहांसे चला। उसके साथ २ बलभद्र तथा दूसरे ग्वालवाल भी गये और यमुना सरोवरके किनारेपर बैठकर उसके जलकी शोभा देखने लगे। इतनेमें श्रीकृष्णचन्द्र वृक्षके ऊपर चढ़कर तालावमें कूदपड़ा और पातालमें पहुंचकर सर्पराजके पास जाकर उसने कमलके लिये प्रार्थना की थोड़ी देरमें वह कमल लेकर बाहिर आगया। उधर जब यशोदाने सुना कि—पुत्र यमुनाके तालावके कमल लेनेको गया है, तब दुखी होकर अपने पुत्रके साथ २ पानीमें गिरनेको जल्दी दौड़ी आई। परन्तु तालावकी भयंकरता देखकर मारे डरके वैसी ही किनारेपर

खड़ी रहगई। सच है—मृत्युका भय सबसे बड़ा भय है। श्रीकृष्णके सकुशल बाहर निकल आनेपर गुवालोंको बहुत ही खुशी हुई। खुशीके मारे वे बांसुरी बजाकर नांचने लगे। श्रीकृष्ण बलभद्र और गुवालोंके साथ वापिस मथुरा आया। उसे देखकर लोगोंने उसकी बहुत कुछ प्रशंसा की। श्रीकृष्ण राजसभामें पहुंचा। कमल कंसके सामने रख दिये और उसे नमस्कार किया। कमलोंको देखते ही कंस मानसिक व्यथासे बहुत दुःखी हुआ। फिर भी उसने कुछ विचारकर गुवालोंसे कहा—तुम जानते हो, मेरे यहां एक नागशय्या है। जो उसके ऊपर शयन करैगा, उसे वह शय्या देदी जायगी, जो पुरुष मेरे सारंगधनुषपर डोरी चढ़ा देगा उसे वह धनुष पारितोषिकमें दे दिया जावेगा, और जो मेरे पांचजन्य शंखको बजावैगा, उसे वह शंख भी दे दिया जावेगा। कंसका कहना था कि श्रीकृष्णचन्द्र लोगोंके देखते २ जाकर शय्यापर सोगया, धनुष चढ़ा दिया और पांचजन्य शंख भी उसने पूरदिया। कृष्णने उस समय सब लोगोंको अपनी विलक्षण शक्तिका परिचय दिया। सब लोगोंने हृदयसे उसकी स्तुति की। वीर श्रीकृष्णको देखते ही कंसका मुख मण्डल कुम्हला गया। उस वक्त बलदेवने बड़ी हुशियारीसे श्रीकृष्णको भय दिखाकर कहा—क्यों रे मूर्ख, सब गायोंको छोड़कर वैठे २ तुझे यहां कितना समय वीतगया। इन सब अपने साथी गुवालोंको लेकर वृन्दावनको क्यों नहीं जाता? सुनते ही श्रीकृष्ण उठा और शय्या धनुष तथा

शंख लेकर वनकी ओर चला गया। कंसको इन वातोंसे बड़ा ही दुःख पहुंचा। फिर उसने एक और उपाय श्रीकृष्णके मारनेके लिये विचारा। वह यह कि उसके यहां दो पहलवान थे। उनके नाम थे, चाणूर और मुष्टिक। उन्हें बुलवाकर कंसने एकान्तमें पूछा,—क्या तुम लोग कुछ करके बता सकोगे? उत्तरमें पहलवानोंने कुछ हंसकर कहा—महाराज, हम लोग क्या कर सकते हैं यह बात तब जानी जा सकेगी जब कि एकवार शत्रुकी और हमारी मुठ भेड़ करा दोगे। पहले कुछ कहना व्यर्थ है। उनके कहनेसे कंसको बड़ा ही सन्तोष हुआ। उसने उसी दिनसे पहलवानोंके लड़नेके लिये अखाड़ेका काम आरंभ करवा दिया। और गुवालोंको बुलवाकर उनसे कहा कि, तुम लोंगोंको भी किसी दिन लड़नेके लिये मेरे यहां अखाड़ेमें आना चाहिये। यहां पहलवानोंकी कुश्तियां होंगी। वलभद्रने यह सब हाल जाकर श्रीकृष्णसे कह दिया। वसुदेवने सौर्यपुरमें अपना दूत भेजा और यादवोंको बुलवाये। समाचार सुनते ही यादव आ पहुंचे। जब कंसने यह सुना कि सब यादव मिलकर यहां आरहे हैं, तब उसे बड़ी भारी कठिन समस्यामें फंसना पड़ा। कंसने विचारा कि, अब वैसे काम न चलेगा। सो उसने साम्हने जाकर उन लोगोंका बड़ा ही आदर सत्कार किया तथा वसुदेवको किसी तरह समझाकर वह अपने घर लिवा लेगया। यादवगण मिलकर विचार करने लगे कि, देखो! इस दुष्टने तो श्रीकृष्णके मारनेके लिये बड़ी ही दुष्टता फैला रक्खी

है अब यदि यह कुछ दुष्टता करै, तो इसे नियमसे मार देना चाहिये। यह निश्चयकर यादव शान्िततासे रहने लगे।

एकदिन प्रातःकाल बलदेव वृन्दावन गये और जाकर यशोदासे बोले—यशोदा, जल्दी स्नान तथा भोजनकी तयारी कर क्यों कि हमें मल्लयुद्धके लिये बहुत शीघ्रतासे मथुरा जाना है। युद्धका नाम सुवते ही यशोदा एकदम ठंडी होगई। उसे शिथिल देखकर बलदेवने रुष्ट होकर कहा—क्यों तुझे भी घमण्ड आगया जो मेरे कहनेको टाल रही है! बलदेवके दपटनेसे यशोदाके नेत्रोंसे आसुओंकी धारा वह निकली। माताको रोती हुई देखकर श्रीकृष्णको बहुत दुःख हुआ। बलदेव कृष्णकी यह हालत देखकर लिवा लेगये और बोले—तुम्हारे मुखके मलीन होनेका क्या कारण है? ठीक २ कहो। उत्तरमें श्रीकृष्णने कहा—आपने क्रोधमें आकर मेरी माताको जब गाली तक दे डाली, तब मुझे दुःख क्यों न हो?

बलदेव श्रीकृष्णका आलिङ्गन कर बोले—भाई, यशोदा तुम्हारी सच्ची माता नहीं है सच्ची माता देवकी है। पापी कंसने पहले तुम्हारे छह भाइयोंको मार डाले थे और तुम्हें भी मारना चाहता था। इस लिये जन्मसमय तुम्हारा स्थान परिवर्तन कर दिया गया था। और बदलेमें यशोदाकी पुत्रीको ले जाकर तुम्हारी माताको देदी थी। तुम्हैं मैं यशोदाके घर पहुंचा गया था। यशोदाने पुत्रकी इच्छासे दूध पिलाकर तुम्हें बढ़ाया है। कंसने जो जो

अन्याय किये हैं, उन्हें तुम क्या नहीं जानते ? आज-भी वैसी ही दुष्टता उसने विचारी है। वास्तवमें यह मल्ल-शाला तुम्हारे ही मारनेके लिये वनवाई गई है। यह नहीं मालूम होता कि—आज क्या होता है? तथा हमारी क्या हालत होगी? वलभद्रके कहनेको सुन-कर और अपने वास्तविक माता पिताका हाल जानकर श्रीकृष्णको वहुत आनन्द हुआ। उन्होंने कहा—यशोदा मेरी वास्तविक माता नहीं है, तो क्या हुआ? जव वे मुझे पालती हैं, तो उनको पूज्य समझना ही चाहिये। इसके पीछे नदीमें स्नान कर दोनों घर गये। श्रीकृष्णने माता-को नमस्कार कर भोजनकी याचना की। यशोदा दोनोंके लिये आसन लाई और उसने उनसे वैठनेके लिये कहा। दोनों सहर्ष वैठे और भोजनके लिये हाथ धोये। यशोदाने उत्तम २ भोजन परोसा। भोजनसे निवृत्त होकर वे दोनों भाई युद्धके लिये सुसज्जित हुये। और माताको नमस्कारकर गुवालोंके साथ २ मथुराकी ओर रवाना हुये। रास्तेमें वन्दी-जन उनका यशोगान करते हुये उन्हें उत्तेजित करते जाते थे। जब कंसने सुना कि—श्रीकृष्ण आरहे हैं, तव उसे बड़ा ही भय हुआ। उसने और कुछ उपाय न देखकर वन्दी जनोंके द्वारा बहुतसे अशकुन करवाये और दैत्योंके द्वारा उपद्रव करवाये, तौभी श्रीकृष्ण और वलदेव वापिस न लौटे। जव ये वलवान वीर मथुरामें आ पहुंचे, तव लोगोंने देखकर जान लिया कि, अव कंसकी कुशल नहीं है। ये लोग उसी वक्त यादवोंके साथ मल्ल-

शालामें गये जहां कंस वैठा हुआ था। पहुंचते ही श्रीकृष्ण लड़नेके लिये तयार होकर जा वैठा। कंसने डरते २ चाणूर और मुष्टिकको लड़नेके लिये श्रीकृष्णके पास भेजे। चाणूर और श्रीकृष्णकी वहुत देरतक लड़ाई होती रही, परन्तु चाणूर कृष्णका कुछ न कर सका। यह देख कंसने मुष्टिकको भी लड़नेके लिये कहा। मुष्टिक उठा ही था कि वलदेवने उसे वायें हाथसे रोक दिया। और अपनी मुष्टि मुष्टिकके सिरपर मारनी चाही, इतनेमें कंस बोल उठा—तुम भी अकेले इसके साथ क्यों नहीं लड़ते ? कंस-का तो कहना था कि वलदेवने मुष्टिकको जमीनपर दे मारा। उधर श्रीकृष्णने भीं चाणूरको छातीसे दवाकर यमके घर पहुंचा दिया। जव कंसने देखा कि, इन लोगोंने ऐसे दुर्जय पहलवानोंको भी मार दिये, तव उसे वड़ा ही क्रोध आया। वह स्वयं खड्ग लेकर उठा। और लाल २ आंखे कर श्रीकृष्णसे वोला कि—क्यों रे दुष्ट, तूने मेरे वीर पहलवानोंको क्यों मारे ? वे तो वेचारे केवल लीलासे लड़ रहे थे। यदि तेरी दुष्टता उन्हें मालूम हो जाती, तो वे तुझे इसका मजा पहलेहीसे चखा देते। अस्तु। मैं ही इस दुराचारका वदला चुकाकर तुझे यममन्दिर पहुंचा देता हूं। कंस यह कह कर उठा और खड्ग हाथमें उठा-कर श्रीकृष्णके मारनेके लिये सन्मुख आया। उसे अपने साम्हने आता हुआ देखकर श्रीकृष्णने और कुछ न पाकर हाथीके वांधनेके खंभेको उखाड़ा और साम्हने आगे बढ़-कर कहा—रे दुष्ट, क्या नहीं जानता कि तूने मेरे छह-

भाइयोंको मारे हैं। देख मैं उन सबोंका वदला एक ही वार-मे चुकाता हूं। यह कहकर श्रीकृष्ण कंसपर टूट पड़े। इतनेमें यादव भी युद्धके लिये उठ खड़े हुए। भीषण युद्ध हुआ। वहुतसे लोग मारे गये। अन्तमें श्रीकृष्णने कंसको खंभेसे इसतरह मारा कि, वह गतप्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। कंसके मरते ही उसकी सेना भी जिधर जगह मिली उधर भागी और सब जगह श्रीकृष्णचन्दकी आज्ञाका विस्तार हुआ। कंसका अग्निसंस्कारकर सब यादव घरपर आगये और निष्कण्टक होकर उन्होंने देवकीके यहीं भोजन किया।

उधर जब जीवंयशाने स्वामीकी मृत्युका हाल सुना, तब उसे बहुत ही दुःख हुआ। वह उसी वक्त राजगृहमें गई और अपने पिता जरासंधके साम्हने अपनीं चूड़ियें फोड़ कर तथा स्वामीके मरणका हाल कह कर रोने लगी। जरासंध उसकी यह दशा देखकर वोला—पुत्रि, क्यों रोती है? दैवका लेख मिट नहीं सकता। तू चिन्ता मतकर तेरे स्वामीको मारकर वह भी बहुत काल न जीसकेगा। देखूं, अव वह कहां जाकर रहता है? तू महलके भीतर जा और अब इस विषम दुःखसे बचनेका उपाय कर। उस पापीको तो मैं अभी यमपुर पहुंचाये देताहूं। पुत्रीको महलके भीतर भेजकर जरासंधने यादवोंपर स्वयं युद्धकी तयारी की। जरासंधको जाता हुआ देखकर उसके भाईने प्रार्थना की कि—नाथ आप कहां जाते हैं? उत्तरमें जरासंध बोला—आजकल यादव बड़े ही

मदोन्मत्त हो रहे हैं। उन्हींका मुझे सर्वनाश करना है। सुनकर अपराजितने बड़ेभाईसे प्रार्थना की कि—भाई, विचारे यादव दीन हैं, उनपर आप क्रोध क्यों करते हैं। यदि आप इनका मारना ही उत्तम समझते हैं, तो आप ठहरें, मैं जाकर इनका नामशेष किये देता हूं। यह कहकर अपराजित बड़ी भारी सेनाके साथ निकला और जल्दीसे मथुरा जा पहुंचा। उस वक्त सब यादव भी वहीं थे। सो अपराजितका आना सुनकर वे भी रणभूमिमें आ पहुंचे। कृष्ण और अपराजितका भीषण युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रने खड्गके द्वारा अपराजितको भी यमपुर पहुंचाया। अपराजितके मरते ही उसकी सारी सेना चारों दिशाओंमें भाग गई। यादव लोग निष्कण्टक होकर उनमेंसे कितने मथुरामें ही ठहरे और कितने सौरीपुरको चले गये।

श्रेणिकने भगवान गौतम गणधरसे कहा—नाथ, मुझे कुछ पूछना है। वह यह कि श्रीनेमिनाथके चरित्र सुननेकी मेरी इच्छा है। श्रेणिकके पूछनेपर गौतम भगवान् नेमिनाथका चरित्र यों कहने लगे;—यादवोंके स्वामी समुद्रविजय नामक राजा थे। उनकी प्रधान महाराणीका नाम था शिवादेवी। एकदिन शिवादेवी अपने शयनागारमें सुखपूर्वक सोई हुई थी कि, उसे जिनेन्द्रके अवतारके सूचक गजराज, वृषभ, केसरी, दो कलशोंसे स्नान करती हुई लक्ष्मी, दो पुष्पमालाएँ, अखण्ड चन्द्रविम्ब, उदय होता हुआ सूर्य, मीनयुगल, दोकलश, कमलोंसे शोभित

सरोवर, गंभीर समुद्र, सुन्दर सिंहासन, छोटी २ घण्टियोंसे सुशोभित विमान, धरणेंद्रका भवन, प्रदीप्त रत्नसमूह निर्धूमअग्नि आदि वस्तुएँ स्वप्नमें दीख पड़ीं। इसके वाद उसने अपने मुखमें प्रवेश करते हुए हाथीको देखा। स्वप्न देखकर देवी जग गई प्रातःकाल हुआ शौचस्नानादिसे निमटकर वह सखियोंके साथ राजसभामें गई। महाराजने महाराणीको अपने पास वांयी ओर वैठाकर कहा—देवी, आज क्या विचार करके आई हो? महाराणी वोली—नाथ, रात्रिके अन्तिम समयमें मैंने कई स्वप्न देखे हैं। उनका फल आपसे पूछनेकेलिये आई हूं। यह कहकर उसने सव स्वप्न ज्योंके त्यों कह सुनाये जो रात्रिमें देखे थे। महाराज स्वप्न सुनकर उनका फल कहने लगे कि—देवी! तुम्हारे गर्भमें तीर्थंकर अवतार लेंगे। जिनकी आज्ञाका सन्मान देवता तक करते हैं। उनके अवतारके छह महीने पहलेहीसे प्रतिदिन देवता अपने घरपर रत्नवर्षा करेंगे। और दिक्कुमारियां तुम्हारी सेवाके लिये उत्कण्ठित हो रही होंगी। शिवादेवी भगवानकी उत्पत्ति अपने पतिसे सुनकर वहुत ही प्रसन्न हुई। और फिर सखियोंके साथ महलोंमें चली गई।

कुछ दिनों वाद उस देवताओंके द्वारा पूज्य गर्भकी दिनों दिन वृद्धि होने लगी। उसके भारसे शिवादेवीको किसी तरहकी तकलीफ न हुई, जैसे प्रतिविम्वके पड़नेसे दर्पणकी किसी तरह हानि नहीं होती है। गर्भ पूर्ण दिनोंका हुआ। श्रावणमास शुक्लपक्षमें छठके दिन शुभमुहूर्त शुभदिनमें चित्रानक्षत्रका योग होनेपर सौभाग्यवती

शिवादेवीने त्रिभुवनमहनीय पुत्र, प्रसव किया। पुत्रके उत्पन्न होते ही नगरभरमें आनन्दोत्सव होने लगा, देवोंके आसन चलायमान हुये, और सुन्दर २ वाजोंका मनोहर शब्द होने लगा। सौधर्मेन्द्र अवधिज्ञानसे यह जानकर कि इस समय भारतवर्षमें तीर्थराजका अवतार हुआ है; उसीवक्त ऐरावत हाथीके ऊपर चढ़कर देवताओं और अपनी इन्द्राणीके साथ वहांसे रवाना हुआ। दुन्दुभि, घण्टा आदि वाजोंका इतना शब्द हुआ कि दिशायें गूंज उठी। शब्दका सुनना तक कठिन पड़गया। थोड़ेमें यों कह लीजिये कि वड़े भारी महोत्सवके साथ महेन्द्र सौरीपुरमें आया और उसने सभक्ति वहींपर पञ्चाश्चर्यकी वर्षा की।

इन्द्रने बहुत वड़े ऐश्वर्यसे शहरको सुसज्जित किया। और पश्चात् अपनी प्रियाको भगवानके लानेके लिये राजमहलमें भेजी। इन्द्राणी स्वामीके कहे अनुसार प्रसूतिगृहमें गई और वहां अपनी दिव्य शक्तिसे ठीक वैसा ही एक सुन्दर बालक रखकर नेमिनाथको उठा लाई। लाकर उसने भगवानको इन्द्रके हाथमें रख दिये। इन्द्र उन्हें ऐरावत हाथीपर बैठाकर वड़े समारोहके साथ २ सुमेरु पर्वतपर लेगया। वहांसे पाण्डुक वनमें ले जाकर उसने भगवानको पाण्डुक शिलापर विराजमान किये और अभिषेक क्रियाका आरंभ किया। सब देवता लोग रत्न तथा सुवर्णके बने हुये एक हजार आठ कलश अपने हाथमें लेकर क्षीरसमुद्रपर गये। उन्होंने समुद्रसे लेकर पर्वतपर्यन्त कलशोंकी ऐसी सुन्दर श्रेणी बांध दी, जो

मनको मुग्ध किये देती थी। वाद इन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित भगवानका अभिषेक करने लगा। इस समय सुमेरु पर्वत अभिषेकके जलसे ऐसा मालूम होता था मानों वह चांदीका वना हुआ हो। जव भगवानका क्षीराभिषेक हो चुका, तव दूसरे जलसे अभिषेक कर शचीने जिनराजका शरीर पौंछा और सुगन्धित चन्दनादिका उनके सरीरमें विलेपनकर अनेक तरहके सुन्दर फूलोंसे उनकी पूजा की। पश्चात् इन्द्र भगवानको सोलहों भूषणोंसे भूषित कर और उनके अंगूठेमें अमृत रखकर स्तुति करने लगा—

हे नाथ! हे जिनाधीश! हे विश्वपितामह! हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे परमेश्वर! आप संसारमें सदाकाल सर्वोत्कृष्ट रहें। आप जगतके स्वामी हैं, सवके नमस्कार करनेके योग्य हैं, संसारमें आपसे वढ़कर और कोई पूज्य नहीं हैं, आप जगतके देखने और जाननेवाले हैं, स्वयंभु हैं, विज्ञानकी मूर्ति हैं, अजर हैं, अमर हैं, और कर्मोंके जीतनेवाले हैं। आपको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। नाथ! आप भक्तजनोंके रक्षक हैं, दरिद्रताके नाश करनेवाले हैं, दुःखदारिद्रताके मिटानेवाले हैं, आप ही कामधेनु (मनोवांछितके देनेवाले) हैं, ज्ञानकी शरीरिणी प्रतिमा हैं, अनन्त वलके धारक हैं, मूर्तिमान तेज हैं, नीरोग हैं, आपमें ही अनन्त शक्तियां हैं, आप किसीसे क्षोभको प्राप्त होनेवाले नहीं हैं, वीतराग हैं, इच्छारहित हैं, कामरूप सर्पके नष्ट करनेको गरुड़ हैं, कर्मरूप वनके भस्म करनेको वह्नि हैं, इच्छितके देनेको चिन्तामणि हैं, आश्रयी

जीवोंके रक्षक हैं, सज्जनोंके पालक हैं, पञ्चेन्द्रियोंके जीतनेवाले हैं तथा आपत्तियोंके विनष्ट करनेवाले हैं। इस प्रकार वहुत देरतक भगवानकी सप्रेम स्तुति करके इन्द्रने भगवानका नाम अरिष्ट नेमि रक्खा। और पीछे वह उन्हें ऐरावत हाथीपर वैठाकर सौरीपुर वापिस ले आया। वहां आकर उसने माताके पास रख आनेके लिये अपनी प्रियासे कह दिया। वह उन्हें उसी अवस्थामें माताके पास रखकर चली आई। जव शिवादेवीकी निद्रा खुली, तो देखती है कि—पुत्र सोलहों भूपणोंसे भूपित है। उसे वड़ा ही आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् इन्द्र भगवानके मातापिताकी पूजन कर अपने स्थानपर चला गया। इन्द्रके चले जानेपर यादवोंने भी वहुत कुछ भगवानका जन्म महोत्सव किया। भगवान् दिनोंदिन देवकुमारोंके साथ २ क्रीड़ा करते हुए वढ़ने लगे। उनके लिये कुवेर प्रतिदिन वस्त्राभूपण भेजा करता था।

उधर जव जरासन्धने सुना कि, छोटा भाई यादवोंके द्वारा मारा गया है, तव उसे वड़ा क्रोध आया। वह उसी समय वड़ी भारी सेना लेकर यादवोंसे युद्ध करनेके लिये चल पड़ा। यादव यह सुनकर कि जरासंध चढ़कर आ रहा है, वहुत घवराये और सव मिलकर विचारने लगे कि—जरासंधसे लड़ाई करके हमारा यहां रहना उचित नहीं जान पड़ता अतः कहीं दूसरी जगह भाग चलना चाहिये, जहां यह हमारा हाल कुछ भी न जान सके। इस प्रकार निश्चय करके सव यादव जानेके

लिये तयार हुये। उनके पीछे २ नगरके भी लोग चले। जरासंधने यह देखकर कि सारा शहर ऊजड़ पड़ा हुआ है समझ लिया कि, यादव भाग गये इसलिये उसने उनका पीछा किया। आगे २ अनेक प्रकारके वाहनोंपर चढ़े हुये यादव जा रहे थे, और उनके पीछे २ जरासंध। चलते २ उन्हें एक सुबेल नामक पर्वत मिला। वे सब जल्दीसे उसपर चढ़ गये। इतनेमें जरासंध भी पर्वतकी तलहटीमें आ पहुंचा। जब यादवोंने देखा कि जरासंध शीघ्रतासे पर्वतपर भी चढ़ा आ रहा है, तब वे उसके पहुंचनेके पहले ही उतरकर आगेको चल दिये। जरासंध पर्वतपर पहुंचा। उसे आशा थी कि, यादव पर्वतपर मिल जावेंगे। परन्तु वहां उसे उनके स्थानमें कहीं चतुरंग सेना, कहीं प्रज्वलित चिता, कहीं हाथियोंके समूह, कहीं घोड़े, कहीं हजारों स्त्रियां, और कहीं सैंकड़ों मुरदे जलते हुये दीख पड़े। थोड़ेमें यों कहना चाहिये कि उस समय देवोंकी मायासे वह स्थान खासा कालका घर बन रहा था। वहींपर जरासंधको एक वृद्ध स्त्री रोती हुई दीख पड़ी। उसने वृद्धासे पूछा—तू कोन है? क्यों रोती है? और यह भयंकर काण्ड क्या हो रहा है? क्या यह किसीके डरके मारे किसीने किया है और यदि किया है, तो क्यों? सुनकर वृद्धाने कहा—सुनिये, जो कुछ हाल है, उसे मैं ज्योंका त्यों सुनाये देती हूं—

जरासंध नामका पृथ्वीमें प्रसिद्ध एक राजा है। उसीके भयके मारे यादवोंने यह भीषण काण्ड रचा है अर्थात्

वे सव यहां जलकर भस्म हो गये हैं। मैं कुल परम्परासे उनके घरकी दासी हूं, परन्तु मुझे अपना जीवन प्यारा होनेसे मैं उनके साथ नहीं जली। उन्हींके इस असह्य दुःखसे दुःखिनी होकर यहां वैठी २ रो रही हूं। वृद्धाके वचन सुनकर जरासंधको वहुत ही खुशी हुई। वह कहने लगा कि क्या यादवोंको मेरा इतना भय है? जो वेचारोंके लिये कहीं स्थानतकका ठिकाना नहीं रहा। आखिर वह यह समझकर कि—सव यादव जल मरे हैं अव मैं आगे जाकर ही क्या करूंगा? लौटकर घरपर चला आया और निःशंक होकर राज्य करने लगा। जव यादवोंने सुना कि जरासंध पीछा घरकी ओर लौट गया, तव वे भी धीरे २ चलकर समुद्रके पास आ पहुंचे और नानाप्रकारके फल फूलोंसे सुशोभित उसके किनारेको देखकर उन्होंने वहीं पर रहनेका निश्चयकर आगे चलना वन्द कर दिया।

एक दिन श्रीकृष्णने दर्भासनपर वैठकर दो उपवास किये और सागरासुरसे प्रार्थना की कि, आज मैं तुम्हारा अतिथि हुआ हूं। अतः मेरे रहनेको तुम्हें किसी स्थानकी तजवीज करनी उचित है। उपवासके प्रभावसे सागरासुरने स्वयं आकर और हाथ जोड़कर श्रीकृष्णसे प्रार्थना की कि—नाथ! कहिये मुझे क्या आज्ञा देते हैं? श्रीकृष्ण वोले—मैंने कहा न कि मैं तुम्हारा पाहुना हुआ हूं, सो तुम मेरे रहनेको स्थान दो। और मुझे अपना भाई ही समझो। सागरासुर वोला—नाथ! जवतक आप संसारमें जीवित रहेंगे, तवतक मैंने आपके रहनेको स्थान समर्पित

किया। श्रीकृष्णने यह कहकर कि अच्छी वात है समुद्रको वारह योजन आगे हटाकर वहांका स्थान अपने अधिकारमें कर लिया। श्रीकृष्णकी इस अपूर्व शक्तिसे और भगवानके वहां आनेसे इन्द्रका भी आसन चलायमान हुआ। उसने भगवानका और श्रीकृष्णका वहां आना समझकर भगवानकी भक्तिसे कुवेरको आज्ञा देकर भेजा। कुवेरने भगवानकी भक्तिसे आनन्दित होकर एक वहुत सुन्दर नगरी श्रीकृष्णके रहनेको निर्माण की। उसके चारों ओर मनोहर कोट वनाया गया था। उसमें वड़े २ ऊंचे महल वनाये गये थे और महलोंकी भित्तियें सुवर्णकी वनाई गई थीं। चारों ओर नीचे उतरने और ऊपर चढ़नेको सुन्दर सीढ़ियां अपूर्व शोभा देती थीं। सड़कें वड़ी ही कुशलतासे वनाई गई थीं। सुन्दर जिनमन्दिर मनको मुग्ध किये देते थे। भाव यह कि उसकी सुन्दरतामें किसी तरहकी त्रुटि नहीं की गई थी। उसका नाम द्वारका रक्खा गया था। जव सव तरह द्वारका सज चुकी, तव कुवेरने श्रीकृष्णसे नगरीमे प्रवेश करनेकी प्रार्थना की। उसके कहे अनुसार अच्छे मुहूर्त्तमें सत्पुरुष और अपने वन्धुओंके साथ श्रीकृष्णने द्वारकामें प्रवेश किया। सवका भोजन पानादिसे उचित सम्मान किया गया और उन्हें अच्छे २ स्थान रहनेको दिये गये। जव श्रीकृष्ण सव लोगोंकी व्यवस्था कर चुके, तव वे स्वयं भी एक सुन्दर राजमहलमें रहने लगे। राजमहलकी गजशाला और वाजिशाला आदिसे और भी अधिक श्री हो गई

थी। बड़े २ ऊंचे और मनोहर गृहोंसे शोभित द्वारका इतनी सुरम्य जान पड़ती थी मानो निराधार स्वर्गका एक भाग टूटकर गिर पड़ा है। ठीक है, इन्द्रकी आज्ञासे और जिनभगवानकी भक्तिसे जिस नगरीकी रचना कुवेरके द्वारा हुई है उसका वर्णन करना एक तरह असंभवसा ही प्रतीत होता है।

श्रीकृष्णका पहला विवाह सुकेतु विद्याधरकी कन्या सत्यभामाके साथ हुआ और वही उनकी पट्टरानी कहलाई। तथा दूसरा भीष्मराजाकी पुत्री रुक्मणीसे हुआ, जिसे श्रीकृष्ण शिशुपालका वध करके बलपूर्वक ले आये थे। इसके बाद क्रमसे जाम्बवती, सुसीमा, पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मीमती आदि सोलह हजार राजकुमारियोंके साथ उनका विवाह हुआ। इनके साथ श्रीकृष्णके दिन बहुत ही सुखपूर्वक बीतते थे। इन स्त्रियोंसे उनके प्रद्युम्न आदि पुत्र और अनिरुद्ध आदि पौत्र हुये। श्रीकृष्ण तीन खण्डका राज्य निष्कंटक होकर करने लगे। उनका शत्रु कोई न रहा।

उन्होंने अनेक देशोंको अपने आधीन किये। न्यायरहित प्रजाका शासन करनेवालोंको दण्ड देना और सज्जनोंको सन्तुष्ट करना यह उनकी राज्यशासनपद्धति थी। इसी तरह सुखपूर्वक राज्य करते २ श्रीकृष्णका बहुत समय बीत गया। अब उसके आगेकी घटनाका उल्लेख किया जाता है।

द्वारका सारी पृथ्वीमें उस समय एक ही सुन्दर नगरी

थी। श्रीकृष्णका प्रजापालन उत्तम समझकरके उसमें इधर उधरके लोग आने लगे। एक वक्त बहुतसे व्यापारी मिलकर व्यापार करनेके लिये राजगृहसे चलकर द्वारका आये और वहांसे बहुतसी अच्छी २ वस्तुएँ खरीदकर वापिस राजगृह आये तथा अपने महाराजसे मिले। उन्हें प्रणामकर जो वस्तुएँ द्वारकासे लाये थे, उन्हें महाराजकी भेंट की। उन्हें देखकर जरासंधने उनसे पूछा–तुम लोग इस समय किस देशसे आ रहे हो? और किन २ देशोंकी तुमने इतने दिनतक यात्रा की। तब उत्तरमें व्यापारियोंने कहा–हम लोग द्वारका गये थे। जरासंधने फिर पूछा–अच्छा यह तो बताओ कि द्वारकाका स्वामी कौन है? उसका जन्म किस कुलमें हुआ है? कितनी उसकी शक्ति है? और उसके पास कितनी सेना है? व्यापारियोंने कहा–महाराज! वहां हमने सुना था कि द्वारकाके स्वामीका नाम श्रीकृष्ण है, उनका जन्म यादवकुलमें हुआ है, उनका राज्य तीन खण्डमें है और उनने शिशुपालका विध्वंस किया है। उनकी सेना तथा शक्तिका परिचय किसीके द्वारा दिया जाना संभव नहीं। जरासंधने कहा–ये यादव कौन हैं; जिनके वंशमें कृष्ण उत्पन्न हुआ है? व्यापारियोंने उत्तर दिया–महाराज! देखनेसे तो यादव बड़े ही तेजस्वी जान पड़ते हैं। उनकी प्रसिद्धि सारी पृथ्वीमें हो रही है। उनके नाम–समुद्रविजय, उग्रसेन, वसुदेव आदि हैं। इनमें वसुदेवका पुत्र श्रीकृष्ण है। इसीके द्वारा कंसकी मृत्यु हुई है। महाराज! श्रीकृष्ण

द्वारकाका निष्कण्टक राज्य करते हैं। यह सुनते ही जरासं-धका क्रोध उबल उठा। उसने कहा कि—क्या पापी यादव अभीतक पृथ्वीपर जीते हैं? व्यापारियोंने कहा—महाराज! हां यादवकुलका विस्तार तो सारी पृथ्वीमें हो रहा है। इतना कहकर वे लोग अपने २ घर चले गये।

उनके चले जानेपर जरासंध अपने मंत्रियोंको बुलवाकर उनसे बोला—यादववंश सारी पृथ्वीमें फैल रहा है, पर तुम लोगोंने तो यह हाल मुझसे अभीतक नहीं कहा। सुनकर बेचारे मंत्रियोंने कुछ सोच विचारकर कहा कि—महाराज! यादवोंके होते हुये भी आपको जो उनका हाल न कहा गया। इसका एक कारण है, जरासंध बोला—वह क्या कारण है, जिससे शत्रुओंकी सूचना मुझे न दी गई? मंत्रियोंमेंसे किसी एकने कहा—महाराज! बात तो यह है कि हमें अभी यादवोंसे शत्रुता करना उचित नहीं जान पड़ती। क्योंकि इस वक्त यादवोंकी दशा बहुत अच्छी है। यदि आप अभी उनसे विरोध करेंगे, तो जीवनतक रहना दुर्लभ हो जायगा? और इसी लिये हम लोग आजतक चुप चाप रहे। आप भी इस विषयकी चिन्ता कुछ समयके लिये छोड़ दें। मंत्रियोंकी बात सुनते ही जरासंध रुष्ट होकर उठ खड़ा हुआ और हाथमें खड्ग लेकर चलनेके लिये तयार हो गया। बेचारे मंत्रियोंने फिर भी प्रार्थना की कि—महाराज! अविचारसे काम न करें। आप नहीं जानते कि, कृष्ण ऐसा वैसा साधारण पुरुष नहीं है। यदि आपको उससे युद्ध ही

करना अच्छा जान पड़ता है, तो पहले उसके पास दूत भेजिये। जरासंधने किसी तरह उनके कहनेको स्वीकार किया और फिर बुद्धिशेखर दूतको बुलवाकर उसे द्वारका-की ओर रवाना किया। दूत द्वारका पहुंचकर द्वारपाल की आज्ञा ले सभामें गया, जहां श्रीकृष्ण विराजे थे। उसने अपने स्वामीके घमण्डमें आकर श्रीकृष्णका विनय-तक भी न किया। जब उसकी दृष्टि यादवोंसे सुसज्जित सभामें पड़ी, तो उसके देखते ही वह आश्चर्यसे कर्तव्य-मूढ़ हो गया। कुछ देर ठहरकर वह कहने लगा कि-महाराज! मुझे अपने स्वामी जरासंधका कुछ सन्देशा आपसे कहना है सो उसे जरा ध्यानपूर्वक सुनिये-"मैं तुम्हारी दुर्विनीतता कहांतक सहन करूं? तुमने मेरे ज-माईतकको मार दिया और मेरे छोटे भाई अपराजित की भी यही हालत की। इतना होनेपर भी तुम्हें इतना घ-मण्ड है, जो जरासंधके आधीनतामें रहना नहीं चाहते? तुम यह मत समझो कि हम तो समुद्रके बीचमें रहते हैं, हमें किसका डर? तुम डर करके द्वारकामें जाकर बसे हो। सो, तुम्हारा यह डर ही तुम्हारे जीवनको निःसार कर रहा है। इसलिये आकर जरासंधकी आधीनता स्वी-कार करो। तभी जीवन स्थिरतासे बिता सकोगे? उसकी सेवासे पराङ्मुख होकर रहना बड़ी ही मूर्खता है। दूतके इन वचनोंसे यादवोंको बड़ा ही क्रोध आया। उन्होंने उसी वक्त दूतको सभासे बाहर निकलवा दिया। दूतने आकर जरासंधसे वे सब बातें कह सुनाईं जो

यादवोंने उससे कहीं थीं। सुनते ही जरासंधको बड़ा क्रोध आया। वह उसी वक्त सेना लेकर युद्ध करनेको कुरुक्षेत्रकी ओर चल पड़ा। उधर कृष्णने जब सुना कि, जरासंध ससैन्य कुरुक्षेत्रमें आ उपस्थित हुआ है, तब वे भी अपनी सेना लेकर युद्धभूमिमें आ पहुंचे। दोनों ओरकी सेनाओंमें नानातरहके युद्धके बाजे बजने लगे। जरासंधकी सेनामें चक्रव्यूहकी रचना की गई। उधर कृष्णकी सेनामें वसुदेवने गरुड़व्यूह रचा। दोनों व्यूहमें परस्पर घोर युद्ध आरंभ हुआ। इस युद्धकी भीषणता देखकर आकाशसे देखनेवाले देवता तथा दानवोंको बड़ा ही चमत्कृत होना पड़ा। उसवक्त हाथियोंके गर्जनेका, घोड़ोंके हींसनेका, रथोंके चीत्कारोंका, पैदल सेनाके बोलनेका, अनेक तरहके बाजोंके बजनेका, भाट लोगोंके जयध्वनिका, और धनुषपर ज्याके चढ़ानेका इतना कोलाहल हुआ कि–दिशायें शब्दमई हो गई–कानोंसे सुनना तक कठिन हो गया। हाथी हाथियोंके साथ, घोड़े घोड़ोंके साथ, रथ रथोंके साथ और पैदल सेना अपने समानवालेके साथ भयंकरतासे लड़ने लगी। दोनों सेनाओंमें बड़ा भारी घमसान युद्ध हुआ। जरासंधकी सेनाने यादवोंकी सेनाको तीन तेरह करना आरंभ किया। बलभद्रने देखा कि–सेना भागी जा रही है, तब वे स्वयं उठे और जरासंधकी सेनासे जा भिड़े। भिड़ते ही उन्होंने अपने पराक्रमका अलौकिक परिचय दिया। उस समय जरासंधकी सेनाको जिधर रास्ता मिला, उधर ही वह भागने लगी। यह देख

रूप्यकुमार श्रीनेमिनाथसे युद्ध करनेके लिये इस तरह सन्न-द्ध हुआ, जैसे हरिण सिंहसे लड़नेकी इच्छा करता है। नेमि-नाथने उद्वेगमें आकर ऐसे जोरसे वाण चलाये कि, उनसे हजारों योद्धा देखते २ धराशायी हो गये। उधर जरासंध और श्रीकृष्णकी मुठभेड़ हुई। कृष्णने उसकी सारी सेना तितर वितर कर दी। अस्त्रशस्त्रसे दोनोंका घोर युद्ध हुआ, परन्तु तौ भी जरासंध श्रीकृष्णको कुछ भी हानि न पहुंचा सका। उस समय उसने और कुछ उपाय न देख-कर श्रीकृष्णके ऊपर चक्र चलाया, जिसे देखकर दैत्यों-तककी छाती दहल जाती थी। चक्र श्रीकृष्णकी प्रद-क्षिणा देकर उल्टा उनके हाथमें आगया। फिर श्रीकृष्णने उसी चक्रको अपने शत्रुके ऊपर चलाया और वह जरासं-सको धराशायी करके—मारके वापिस श्रीकृष्णके हाथमें आ उपस्थित हुआ। श्रीकृष्णकी सारी सेनामें जयध्वनि होने लगी। उनकी आज्ञाका सब जगहँ विस्तार हुआ। श्रीकृष्ण वहींपर जरासंधके पुत्रके लिये राज्य देकर और दिग्विजयी होते हुये द्वारकामें आ गये। देखो! जो चक्र-रत्न जरासंधके पास था, वही अपने स्वामीको मारकर श्रीकृष्णके हाथमें आ गया। यह सब पुण्यकर्मका फल है। इस चक्ररत्नके साथ और भी सात रत्न थे, जो श्री-कृष्णको प्राप्त हुये। जिस समयका यह कथन है, उस समय यादवोंकी संख्या छप्पन करोड़ थी। वे संसारभरमें प्रसिद्ध हो गये थे।

एक दिनकी बात है कि, बलदेव वसुदेव आदि सब

यादव जब सभामें बैठे हुये थे, तब यह बात चल पड़ी कि--इस वक्त सबमें अधिक बलवान कौन है? तब किसीने पाण्डवोंको बताया, किसीने वसुदेवको, किसीने बलदेवको और किसीने वासुदेव श्रीकृष्णको। जब सब लोगअपना २ गाना गा चुके, तब बलदेव कुछ हँसकर बोले-आप लोग बड़े अनभिज्ञ हैं, जो व्यर्थ औरोंकी झूंठी स्तुति कर रहे हैं। क्या आप श्रीनेमिनाथके बलको नहीं जानते कि वे कितने बली हैं? अरे! बेचारे दीन लोग करोड़ भी हों, तो उनसे क्या? पृथ्वीमें एक नेमिनाथ ही अनुपम पराक्रमी हैं। जहाँ भगवान विराजे हैं, वहां और कौन अधिक बली कहा जा सकता है? क्या तुमने कभी केसरीके साम्हने बेचारे हरिण बलिष्ट होते देखे हैं? बलभद्रके द्वारा की हुई नेमिनाथकी प्रशंसा श्रीकृष्णको सह्य नहीं हुई। उन्हें अन्तरङ्गमें तो बहुत बुरा लगा, परन्तु ऊपरसे हँसकर वे नेमिनाथसे बोले-हे महाबाहो! हम लोग बड़े पराक्रमी समझे जाते हैं। परन्तु आओ, आज हम और आप कुश्ती लड़कर अपने २ बलकी परीक्षा करें? यह कहकर श्रीकृष्ण लंगोट बांधकर और भुजायें ठोककर नीचे उतर पड़े। तथा नेमिनाथसे बोले-लीजिये आप भी जल्दी उतरिये। यह देख नेमिनाथने कहा-इतने लोगोंके साम्हने हम लोगोंका लड़ना ठीक नहीं जान पड़ता है। लड़नेपर हम लोगोंमेंसे किसी एकको अवश्य ही नीचा देखना पड़ेगा। ऐसा लड़ना तो ग्वालोंको ही शोभा देता है, न कि अच्छे बलवानोंको। विचारो, यदि हममेंसे

कोई गिर पड़ा, तो फिर उसकी प्रतिष्ठा क्या कुछ बची रहेगी? इसलिये मैं कुछ और ही बात कहना चाहता हूं। यदि तुम अपनेको बली समझते हो, तो समझो इसमें कुछ हानि नहीं। किन्तु मेरे बलके साथ यदि परीक्षा करना ही तुम्हारा अभीष्ट है, तो इसके लिये केवल इतनी शर्त रक्खी जाती है कि, यदि तुम मेरे पांवको सिंहासनसे हटा दोगे, तो मैं सब युद्धमें तुमसे अपनी हार स्वीकार कर लूंगा। नेमिनाथके कहते ही कृष्ण दौड़े और अपने पावोंको जमीनपर मजबूत जमाकर नेमिनाथके पावोंको खूब जोरके साथ खींचने लगे। परन्तु उसे वे अपने स्थानसे जरा भी न हटा सके। इस घटनासे कृष्णका मुख कुछ मुरझाया। यह देख ने-मिनाथने कहा—खैर, यदि पांवको नहीं हटा सकते, तो न सही; हमारे हाथहीको नीचेकी ओर झुका दो। श्रीकृष्णने उनका हाथ पकड़कर उसके नीचे झुका-नेकी भी बहुत कोशिश की, परन्तु वे उसे तिलमात्र भी न झुका सके। फिर भी नेमिनाथ बोले—अस्तु, इसे भी जाने दो, चिन्ता छोड़ो। सुनो, यदि तुम हमारे बायें हाथकी अंगुलीको भी अपनी शक्तिसे नवा दोगे, तब भी हम तुमसे अपनी हार स्वीकार कर लेंगे। इसे तुम निश्चय स-मझो। श्रीकृष्णने अंगुली पकड़ी। पकड़ते ही नेमिनाथ उन्हें अंगुलीके साथ २ ऊपर उठा कर झुलाने लगे। नेमिनाथकी इस अपार शक्तिको देखकर आकाशमें देव दुंदुभि बजाने लगे। जय जय ध्वनिसे गगनमण्डल

गूंज उठा। पुष्प वर्षाकर देवता भगवानकी स्तुति करने लगे,—नाथ! वास्तवमें आप अनन्तवीर्य हैं। संसारमें आपके समान और कोई वली नहीं है। यह देख कृष्णको वड़ा ही दुःख हुआ। उन्हें सवके सन्मुख मुख नीचा करना पड़ा। एक दिन श्रीकृष्णने वलभद्रसे कुछ वात चीत करते २ कहा कि—नेमिनाथ वड़े वलवान हैं। संभव है कि वे कभी मेरा राज्य भी छीन लें। वतलाईये क्या उपाय करना चाहिये. जिससे राज्य सुरक्षित रह सके? कुछ विचार करके श्रीकृष्णने एक ज्योतिषीको वुलवाया और उससे पूछा कि क्या नेमिनाथ किसी तरह विरक्त किये जा सकते हैं? श्रीकृष्णके आशयको समझकर ज्योतिषीने कहा—हां एक उपाय है। वह यह कि जव नेमिनाथको कोई हिंसाका कारण दीख पड़ेगा, तो वे नियमसे विरक्त हो जावेंगे और संसारको छोड़कर दीक्षा ले लेंगे। ज्योतिषीका भविष्य सुनकर कृष्ण भी उसी तरहके उपायके योजनाकी चिन्तामें लगे।

शीतऋतु व्यतीत होकर वसन्तऋतुका आगमन हुआ। लोगोंके दिलोंमें आनन्दकी तरङ्ग लहराने लगीं। स्त्रियोंको काम पीड़ा पहुंचाने लगा, वेचारे विरही लोगोंकी हालत भी वुरी होने लगी, जो स्त्रियां मानिनी थीं उनका मानभङ्ग हुआ, आम्रके वृक्षोंपर प्यारे मौर आगये, कोकिलाओंकी सुन्दर कण्ठध्वनि होने लगी, वनोंमें किंशुकके लाल २ फूलोंने विलक्षण सौन्दर्य लादिया। ऐसा मालूम होता था, मानो वन लोगोंकी

विरहाग्निसे सन्तप्त हो उठा हो। चम्पक और पाटल पुष्पोंसे सारा वन विकसित हो उठा, सरोवरोंकी कमलोंने शोभा बढ़ा दी। थोड़ेमें यों कहिये कि-जितनी पुष्प जातियां थीं वे सब विकसित होकर वसन्तकी शोभा बढ़ाने लगीं। इन सुखद दिनोंमें श्रीकृष्ण अपनी प्रिया-ओंको साथ लेकर वनक्रीड़ा करनेको गये। साथमें उन्होंने नेमिनाथको भी ले लिये। वनमें श्रीकृष्णके नोक-रोंने पहले ही पहुंचकर केशर और चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओंसे छोटी २ बावड़ियां भर दी थीं। और सुगन्धित वृक्षोंके परागसे मिली हुई गुलाल भी बहुतसी पहुंचा दी गई थी। चारों ओर खूब फूल इकट्ठे किये गये थे; जिन्हें देखते ही स्त्रियोंके मनमें कामका वेग उमड़ आता था। श्रीकृष्ण नेमिनाथको साथ लिये हुये वहीं पहुंचे और जलक्रीड़ा करने लगे। कृष्णकी स्त्रियां उनके ऊपर बार २ जल उलीचने लगीं। और भी नानातरहसे जैसा उन्हें सूझा वे कृष्णके साथ खेलने लगीं। कृष्ण भी जैसी २ उनकी उत्कण्ठा होती थी, उसे पूरी करते जाते थे। खे-लते २ उन्होंने वसन्तके गीत गाना शुरू किये जिनके सुननेसे पुरुषोंका मन मुग्ध हो जाता था। इसी तरह बहुत देरतक खेल खिलाकर श्रीकृष्ण तो जलके बाहिर निकलकर कहीं चले गये और अपनी स्त्रियोंको इशारेसे बतलाते गये कि, नेमिनाथके चित्तको जिस तरह हो सां-सारिक वासनाओंकी ओर आकर्षित करना। तदनुसार कृष्णके जाते ही उन्होंने नेमिनाथके साथ खेलना आरंभ

क्रिया । नानातरहकी वे उनसे हंसी करने लगीं, केशर डालने लगीं, पिचकारी मारने लगीं और इस सम्बन्धमें कि, तुम विवाह क्यों नहीं करते हो, बड़े २ ताने मारने लगीं । क्रीड़ा समाप्त हो जानेपर सब स्त्रियां जलसे बाहिर निकलीं। नेमिनाथ भी बाहिर आये और अपने गीले वस्त्रको अलग करके जाम्बवतीसे बोले—हमारे वस्त्रको निचोड़ दो । हमें घर जाना है, सो जल्दी करो । जाम्बवती सुनकर बहुत रुष्ट हुई और बोली—यह काम अपनी स्त्रीसे करवाइये, मुझसे यह नहीं हो सकता । तुम जानते हो—जो सुदर्शन चक्र चला सकता हो, नागशय्यापर सोनेकी जिसमें शक्ति हो, जो पांचजन्य शंख पूर सकता हो, जो सारंग धनुष्यपर ज्या चढ़ासके वही मुझे ऐसी आज्ञा दे सकता है न कि तुमसरीखे शक्तिहीन पुरुष । इसलिये दूसरोंका काम मैं नहीं कर सकती । जाम्बुमतीकी इस उद्धततासे नेमिनाथके दिलमें बहुत दुःख पहुंचा । वे वहांसे चलकर कृष्णकी युद्धशालामें पहुंचे और वहां ताल ठोककर उन्होंने सुदर्शन चक्रको पांवके अंगूठेसे घुमाया, नागशय्यापर शयन किया, धनुपपर ज्या चढ़ाई और शंखको नासिकाके छिद्रसे पूरा । शंखका शब्द होते ही लोगोंको प्रलयकालकी संभावना होने लगी । कृष्ण एकदम घबराकर बोले—यह क्या? कोई दैत्य तो नहीं आ गया? किसीने कृष्णको जाकर यह सब हाल सुना दिया और कहा—नेमिनाथने तुम्हारी भार्यापर रुष्ट होकर यह सब लीला की है । श्रीकृष्ण उसी वक्त युद्धशालामें

आये और ऊपरसे कुछ हंसकर भाई नेमिनाथसे बोले-विभो! आपके जरासे क्रोधसे वेचारे सांप मरे जाते हैं, इसलिये केवल स्त्रियोंके वचनोंपर आपको ऐसा करना उचित नहीं जान पड़ता। आपके वलका परिचय तो मैंने पहले ही पालिया था, अव उसके विशेष परिचयकी जरूरत नहीं है। आप क्रोधको छोड़ें। क्यों कि यह उत्तम पुरुषोंके द्वारा आदरणीय नहीं है। भगवानको सन्तुष्ट कर श्रीकृष्ण उनसे मिले और वाद उन्हें अपने साथ घरपर लिवा ले गये। वहीं दोनोंने भोजन किया। भोजन करनेके वाद श्रीकृष्ण शिवादेवीके पास पहुंचे और उसको कहने लगे कि—माता! भगवान अव युवा हो गये हैं, उनका विवाह होना चाहिये। देवीने श्रीकृष्णसे कहा—कृष्ण! तुम हमारे घरके अधिकारी हो और तुम्हीं सब कामकाजके करनेवाले हो, इसलिये नेमिनाथके विवाहकी कोशिश तुम्हें ही करनी उचित है। जो काम तुम करोगे, वह सबको मान्य होगा। सो विचारकर जो कर्त्तव्य है, उसे अपनी इच्छानुसार करो। शिवादेवीकी सम्मति लेकर श्रीकृष्ण वलभद्रको साथ लेकर उग्रसेनकी नगरीमें पहुंचे। उग्रसेनने इनका बहुत कुछ आदरसत्कार किया। उग्रसेनके इस आदरसे ये बहुत ही सन्तुष्ट हुये। थोड़ी देरतक कुछ बातचीत होनेके वाद श्रीकृष्णने नेमिनाथके साथ राजकुमारीके विवाहकी बात छेड़ी। उग्रसेनने श्रीकृष्णका कहना स्वीकारकर अपनी पुत्रीका विवाह नेमिनाथसे करना निश्चित कर दिया। श्रीकृष्ण व-

हींपर लग्न वगैरहका ठीक निश्चयकर घरपर आये। इतनी वात और भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि श्रीकृष्ण जूनागढ़में कुछ जीव वधके विषयकी भी गुप्तमंत्रणा कर आये थे। इतनेमें वर्षाकाल आ गया। उन्हीं दिनोंमें नेमिनाथके विवाहका काम चलाया गया। सगे सम्बन्धी जन निमंत्रण पत्र भेजकर बुलवाये गये। उग्रसेनके यहां भी निमंत्रण भेजा गया। उसने वहुतसे लोगोंको द्वारका भेजे। आये हुये अतिथियोंका भोजनादिसे खूब सम्मान किया जाने लगा। कुछ दिनों वाद द्वारकासे वारात विदा हुई। रथ वहुत सुन्दरताके साथ सजाया गया था। उसीमें भगवान नेमिनाथ खूब आभूषणोंसे विभूषित करके वैठाये गये थे। और भी रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना आदि वहुत कुछ राज्य विभव साथमें लिया गया था। अनेक तरहके वाजोंसे आकाश और पृथ्वी शब्दमय हो गई थी। श्रीकृष्ण याचक लोगोंको दान देते हुये द्वारकासे वाहिर निकले। वारातका आगमन समाचार सुनकर राजीमतीने अपनेको अलङ्कारादिसे खूब श्रृङ्गारी। भगवान तोरणके पास आये ही थे कि, इतनेमें उनके कानोंमें पशुओंका विलविलाना सुन पड़ा। भगवानने सारथीसे पूछा—ये पशु क्यों विलविला रहे हैं? और क्यों इकट्ठे किये गये हैं? इनके करुणाजनक शब्दोंसे हृदय वड़ा ही विकल हुआ जाता है। सारथीने कहा—नाथ! ये पशु आपके विवाहके लिये एकत्रित किये गये हैं। आज ही यादवोंके लिये इनका वध होगा। इन सव पशुओंको महाराजने एकत्रित

करवाये हैं। सारथीके वचन सुनते ही भगवानको अनाथ पशुओंके ऊपर बड़ी ही दया आई। वे उसी समय लोगोंके देखते २ रथको लौटा ले गये। रथके लौटा कर लेजाने पर लोगोंमें हाहाकार मच गया। उग्रसेनको बड़ा ही दुःख हुआ। उधर राजकुमारीने जब यह चर्चा सुनी, तब वह भी अधीर हो उठी और बड़ी दीनतासे रोती हुई भगवानके पीछे २ हो चली। लोगोंने भगवानके रोकनेका बहुत कुछ उपाय किया परन्तु वे किसी तरह न रुके। लोगोंने उनसे वापिस लौटनेका कारण पूछा। भगवान बोले—पहले आप यह बतावें कि—ये बेचारे निरपराध जीव क्यों मारे जाते हैं? विवाहका यह घोर फल तो मैंने पहिले ही देख लिया और आगे नहीं कहा जा सकता कि क्या क्या अनर्थ देखने पड़ेंगे? लोगोंने यह सब दोष श्रीकृष्णके ऊपर ही मढ़ा। इस अपवादको सुनकर श्रीकृष्ण भगवानसे बोले—नाथ! यह असह्य लोकापवाद जो मेरे ऊपर लगा है उसका हटाना आपहीके हाथ है। मेरे ऊपर दया करके जो काम आपने विचारा है, उसे पूरा कीजिये। श्रीकृष्णने भगवानसे बहुत कुछ प्रार्थना की परन्तु भगवानने फिर विवाह करना स्वीकार नहीं किया। वे श्रीकृष्णको किसीतरह सन्तोष देकर और पशुओंको छुड़ाकर गिरनार पर्वतपर जा पहुंचे। उस समय लोकान्तिक देवोंने भी आकर और भगवानके वैराग्यकी प्रशंसा कर अपना नियोग पूरा किया। पश्चात् भगवानको पालकीमें बैठाकर उन्हें वे गिरनार पर्वतके सहस्रावनमें लिवा ले

गये। भगवानने सब वस्त्राभरणोंका परित्याग कर अपने सिरके केशोंका लौंच किया। केशोंको लेजाकर इन्द्रने क्षीर समुद्रमें डाल दिये। पश्चात् भगवानने वाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रहका त्याग कर और सिद्ध भगवानको नमस्कार कर पावन जिनदीक्षा स्वीकार की। उस समय सब देव आये और भगवानका दीक्षोत्सव करके अपने २ स्थान चले गये। भगवानके साथ २ और भी एक हजार राजाओंने दीक्षा ली। दीक्षा लेकर भगवान दो दिन तक ध्यानमें लीन रहे। वाद तीसरे दिन हीरपुरमें धनदत्त सेठके यहां भगवानका पारणा हुआ। छप्पन दिनके वाद ध्यानवह्निसे चार घातिया कर्मोंका नाश करके भगवान केवलज्ञानी हो गये। उस दिन आश्विन शुक्ल प्रतिपदा और प्रातःकालका समय था। केवलज्ञान होते ही इन्द्रने आकर गिरनार पर्वतपर वारह कोठोंसे सुसज्जित समवसरण रचा। उसमें डेढ़ योजन चौड़ा और तीन प्राकारोंसे सुशोभित देदीप्यमान भद्रपीठ, मानस्तंभ, सुन्दर २ सरोवर, खाई, पुष्पवाड़ी, नाट्यशाला, वेदिका, ध्वजा और स्तूप आदि और भी वहुतसी मनोहर वस्तुएं वनाई। भगवान सिंहासनपर विराजे। देवता उनके ऊपर चामर डुलाने लगे। भगवानके ग्यारह गणधर हुये। जव द्वारकामें भगवानके केवलज्ञानकी चर्चा फैली, तो श्रीकृष्ण आदि सभी द्वारिकाके लोग भगवानके दर्शन करनेको आये और उनके साथ २ वहुतसी स्त्रियां भी आईं। और भगवानका उपदेश सुनकर राजीमती आदि वहुतसी स्त्रियोंने आर्यिकाके व्रतकी दीक्षा ली।

भगवानने दश लक्षण गर्भित गृहस्थधर्म तथा मुनिधर्मका उपदेश दिया और कितने भव्य पुरुषोंको सुमार्गकी ओर लगाकर वे दूसरे देशोंमें विहार कर गये। जब उनके विहारके समाचार श्रीकृष्णने सुने, तो वे अपने भाईयोंको समझा बुझाकर भगवानके पास लाये और उन्हें जिन-दीक्षा दिलवा दी।

भगवान और देशोंमें विहार कर पीछे गिरनार पर्वत-पर आये। इन्द्रने समवसरण रचा। भगवानके आनेके समाचार सुनकर द्वारकाके सब लोग उनके दर्शनको आये। स्त्रियोंके साथ वसुदेवकी स्त्री देवकी भी भगवानके दर्शन करनेको आई और उनकी पूजा कर धर्मोपदेशके बाद उसने भगवानसे पूछा—नाथ! दिगम्बरमुनि एक दिनमें दो वक्त आहार ले सकते हैं या नहीं? भगवानने कहा—दिगम्बरमुनि एक दिनमें दो वक्त आहार नहीं कर सकते। तब फिर देवकीने कहा कि—नहीं कहा जा सकता कि वास्तवमे बात क्या है? मेरे घरपर आज दो मुनि तीन वक्त आहार कर गये और वे मुझे एक ही सरीखे जान पड़े। भगवान बोले—यह तेरा भ्रम है, जो मुनि आहारके लिये तीन वक्त आये हैं वे सब दूसरे ही हैं। परन्तु बात यह है कि वे छहों तेरे ही पुत्र हैं। यह सुनकर देवकीका सन्देह दूर हुआ। वह पुत्रप्रेमसे विह्वल होकर उसी समय उन मुनियोंके पास गई और उनके पात्रोंमें गिर कर नेत्रोंसे हर्षाश्रुओंकी धारा बहाने लगी। इस घटनाका हाल जब और २ लोगोंने सुना, तो

उन्हें भी संसारकी लीला देखकर बड़ा ही वैराग्य हुआ। बहुतसे भव्योंने तो उसी समय जिनदीक्षा स्वीकार कर ली, बहुतोंने अणुव्रत धारण किये, कितनोंने केवल सम्यक्त्व ग्रहण किया और कितनोंने भगवानकी पूजा करनेकी ही प्रतिज्ञा ली। उस समय भगवानसे देवकीने अपने पूर्व-जन्मका हाल पूछा और श्रीकृष्णकी आठों स्त्रियोंने भी अपने २ पुण्य पापकी कथा पूछी। भगवानने सभीके प्रश्नका ठीक २ उत्तर दे दिया। इसके बाद बलदेवने भी भगवानसे तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेव आदिके उत्पन्न होनेकी बात पूछी—अर्थात् इतने ऊंचे २ पद कैसे मिलते हैं? भगवानने सबका खुलासा वृत्तान्त कह सुनाया। वहींपर गजकुमार भी बैठा २ यह सब हाल सुन रहा था। सुनकर उसे संसारसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय वनमें गया और जिनदीक्षा लेकर कठिनसे कठिन तपश्चर्या करने लगा। उसने बड़े ही धैर्यके साथ भयंकर उपसर्ग सहे। अन्तमें वह कर्मोंका नाश कर अविनश्वर सुखके भवन मोक्षमें जा बसा।

बलदेवने कुछ भविष्यकी बातें जाननेकी इच्छासे भग-वानसे पूछा कि स्वामी! जो संसारमें जन्म लेते हैं उनकी मृत्यु अवश्यंभावी है और यही आपके शासनमें भी उपदिष्ट है। फिर कृपा कर यह बताइये कि श्रीकृष्णकी मृत्यु किस तरह होगी? और द्वारकाका ध्वंस किसके द्वारा तथा किस कारणसे होगा? भगवानने कहा—बलदेव! तुम्हारा पूछना ठीक है, परन्तु जो बातें नियमसे हुआ करती हैं उन्हें मैं ही

क्या कहूंगा। वलदेव वोले—नाथ! आप जो कहते हैं वह वास्तवंमें ठीक है, तौ भी आपको कुछ कहना चाहिये। कारण जीवोंको भविष्यके जाननेकी वड़ी आकांक्षा हुआ करती है। वलदेवका अधिक आग्रह देखकर भगवानने कहा—वलदेव! सुनो, द्वारकाका नाश द्वीपायन मुनि और मदिराके निमित्तसे होगा। इसकी अवधि आजसे लेकर वारह वर्ष है। और श्रीकृष्णकी मृत्यु जरत्कुमारके द्वारा होगी। वलदेवने भगवानका कहना सुना और श्रीकृष्णके पास जाकर उनसे सव हाल कह सुनाया। सुनकर श्रीकृ-ष्णने उसी समय सारे शहरमें यह घोपणा दिलवा दी कि—जो आजसे मेरे राज्यमें मदिरापान करेगा, वह राज-द्रोही समझा जाकर उचित दण्डका पात्र होगा। और जिन २ के यहां मदिरा वनानेके वर्त्तन तथा और कुछ इसकी सामग्री हो, उसे वे शहरसे लेजा कर पर्वतकी गुहाओंमें डाल आवें। श्रीकृष्णकी आज्ञा होते ही सव लोग मदिराके निष्पन्न करनेकी सामग्रीको पर्वतोंकी गुहाओंमें फेंक आये। श्रीकृष्णने प्रजासे एक वात और कही। वह यह थी कि—इस समय जिस किसीको जिनदीक्षा लेनी हो, वह खुशीके साथ ग्रहण करे। मेरा कुटुम्व होनेपर भी इस समय मैं उसे जिनदीक्षा ग्रहण करनेसे नहीं रोकूंगा। श्रीकृष्णकी इस हितकर आज्ञासे प्रजाको वहुत आनन्द हुआ। यह हाल देख श्रीकृष्णकी आठों स्त्रियोंने, प्रद्युम्न कुमारने और भानुकुमारने विलम्व न कर, जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। उधर जव जरत्कुमारको यह वात जान

पड़ी, तो वह भी अपने कुटुम्बके लोगोंको किसी तरह समझाकर कहीं चल दिया और शिकारीका वेष बनाकर वनमें गुप्तरीतिसे रहने लगा। जब द्वीपायनके कानोंमें इस घटनाका हाल सुन पड़ा, तब वे भी द्वारकासे बहुत दूर जाकर दूसरे देशमें रहने लगे। ग्रन्थकार कहते हैं कि, इन लोगोंकी बुद्धिपर खेद होता है जो इन उपायोंसे भगवानके वचन झूठे करना चाहते हैं। अर्थात् ये लोग कुछ भी क्यों न करें परन्तु जो भगवानने कहा है, वह नियमसे होवेहीगा। क्यों कि—

नान्यथा वादिनो जिनाः।

अर्थात्—जिन भगवान झूठ नहीं बोलते हैं।

बहुत समय बीत चुका। एक दिन यादव वनमें क्रीड़ा करनेको गये। क्रीड़ा करते २ वे थक गये। प्यासने उन्हें बहुत सताया। परन्तु कहीं जलका पता नहीं। वनमें खोज करते २ उन्हें पुरानी बहुत दिनोंकी मदिराका भरा हुआ एक गड्ढा मिलगया। गड्ढेकी मदिरा वर्षा समयके जलके गिरनेसे ताजीसी हो गई थी। यादवोंने उसे जल समझकर पी ली। पीकर वे बहुत खुश हुये। वे लोग वनसे घरपर आ रहे थे। रास्तेहीमें उन्हें मदिराका नशा चढ़ आया। नशा इतने जोरसे चढ़ा कि वे उन्मत्त होकर नाना तरहकी कुचेष्टायें करने लगे। वे इसी हालतमें द्वारकाके पास पहुंचे। वहां उन्हें ध्यानमें बैठे हुये द्वीपायन मुनि दीख पड़े। द्वीपायन द्वारकाके लोगोंको यह शुभ समाचार सुनाने आये थे कि, जिन भगवानने जो मेरे द्वारा

द्वारकाका ध्वंस होना बतलाया था और उसकी अवधि बारह वर्षकी बतलाई थी, वह अब बीत चुकी और द्वारकाकी कुछ भी हानि नहीं हुई। उन्हें देखकर यादवोंको द्वीपायनके द्वारा द्वारका दहनकी बात याद हो आई। इससे रुष्ट होकर उन्हें वे पत्थरोंसे मारने लगे। यह कहा जाता है कि, नशेके निमित्तसे पूर्वकी बातोंकी जल्दी स्मृति हो आती है। पत्थरोंकी मारसे मुनिका सारा सिर फट गया। उससे रुधिरकी धारा बहने लगी। यद्यपि मुनिको बहुत भारी वेदना सहनी पड़ी, परन्तु तब भी वे क्रोधित न हुये और ध्यानमें उसीतरह निश्चल बैठे रहे। परन्तु जब पापी यादवोंने मुनिके सिरपर भंगीसे पेशाब करवाई, तब उनसे यह अपमान न सहा गया। क्रोधसे उनके नेत्र लाल होगये। वे उसी समय मूर्छा खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके प्राणोंके निकलनेमें कुछ ही देर थी कि, इतनेमें किसीने जाकर यह सब घटना श्रीकृष्णसे कह सुनाई। सुनते ही बलदेव और श्रीकृष्ण उसी वक्त मुनिके पास दौड़े आये और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करने लगे कि—प्रभो! आप जीवोंके परिपालक हैं और दयालु हैं। आपका इन मूर्ख बालकोंने बहुत भारी अपराध किया है। उसे आप क्षमा करें। भगवान् आपकी दया संसार भरमें प्रसिद्ध है। उससे जब स्थावर जीवोंतकको बाधा नहीं पहुंच सकती, तब उसीके द्वारा औरोंकी रक्षा होना तो साहजिक है। आप महात्मा हैं। क्रोध करना आपको उचित नहीं जान पड़ता। यह आप

खूब अच्छी तरह जानते हैं कि, क्रोधियोंकी दुर्गति होती है। उन्हें कठिनसे कठिन दुःख भोगने पड़ते हैं। उसमें भी साधुओंके लिये तो क्रोध करना बड़ा ही निंद्य समझा गया है। हमारी प्रार्थनापर आप ध्यान दें और इस चाण्डाल क्रोधके स्पर्शतकका परित्याग करें। द्वीपायन मुनि वहुत समझाये गये, परन्तु फिर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। हो कैसे? उन्हें तो दुर्गतिमें जाना था। उन्हें द्वारकासे कहीं अन्यत्र चले जानेके लिये कहा गया। परन्तु इसे भी उन्होंने न माना। सच है, जिन्हें क्रोधरूपी सर्प डस लेता है, फिर उनकी हालत सुधरना असंभव हो जाती है। मुनिने श्रीकृष्णसे इशारेसे शहरमें जानेको कह दिया। लाचार होकर वे शहरमें चले गये। जाकर ही उन्होंने शहरमें यह घोषणा दिलवा दी कि जिन्हें अपना जीवन प्यारा हो, वे इसी समय यहांसे निकल कर दूसरे देशमें चले जावें। घोषणाके सुनते ही शम्बुकुमार आदि वहुतोंने गिरनार पर्वतपर जाकर भगवानसे जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

उधर द्वीपायनके प्राणोंके निकलनेकी तयारी हो ही रही थी, सो वे मर कर अग्निकुमार देव हुए। अवधिज्ञानसे यादवोंके द्वारा किये हुये दुराचार को यादकर वे उसी समय द्वारकामें आये और उसके चारों ओर अग्नि लगाकर लोगोंसे वोले कि द्वीपायन मुनि अव यहांसे पक्षीतक को भी निकलने न देगा, फिर तुम्हारी तो वात ही क्या है? श्रीकृष्णको जव इस भयं-

करताकी खवर लगी, तो वे झटसे वलदेवके पास आये और उन्हें अपने साथ लेकर अपने माता पिताको द्वारकाके वाहिर निकालनेकी कोशिश करने लगे। उन्हें रथमें बैठाकर द्वारकाके वाहिर निकलनेके दरवाजेपर पहुंचे। जाकर देखते हैं, तो दरवाजेके किवाड़ वन्द हैं। वहांसे दूसरे दरवाजेकी ओर गये, तो उसके भी किवाड़ वन्द मिले। यह देखकर अग्निकुमारने श्रीकृष्णसे कहा- श्रीकृष्ण तुम व्यर्थ ही खेद उठा रहे हो। सारी द्वारिकामें केवल तुम और वलदेव ही वच सकोगे और कोई नहीं वचेगा। यह निश्चय समझो, अग्निकुमारकी यह वात सुनकर वलदेव दोड़े हुये समुद्रपर पहुंचे और अपने हलके द्वारा जमीन खोदकर जलका नाला वहा लाये। परन्तु फिर भी कुछ फल नहीं निकला। पापके फलसे वह जल भी तैलरूप हो गया। ठीक है, जव दैव ही प्रतिकूल हो जाता है, तब न तो पाण्डित्य काम आता है और न शूरता ही।

श्रीकृष्णके मातापिताने पुत्रके द्वारा अपना वचना कठिन समझकर चारों प्रकारके आहारका परित्याग कर दिया और जिनधर्मके ध्यान करनेमें जी लगाया। उसके प्रतापसे वे अन्तमें मरकर स्वर्गमें देव हुये।

नोट—हरिवंशपुराण और प्रद्युम्नचरित्रमे यह कथा द्वीपायन मुनिके शरीरसे अशुभ पुतला निकला था और उसके द्वारा द्वारकादहन हुआ था, इस रूपमें पाई जाती है। परन्तु यहां दूसरी तरह देखी जाती है। इसका हेतु ठीक २ नहीं जान पड़ता कि, यह विरोध क्यों है?

देखते २ द्वारिका भस्म हो गई। सारी नगरीमें श्रीकृष्ण और वलदेव ही वचे। इस घटनासे दोनों वहुत ही दुःखी हुये। दुःखका उद्वेग वहुत वढ़ा, अन्तमें वे उसे सह न सके, सो दोनों मिलकर रोने लगे। कुछ देर वाद जव हृदय शान्त हुआ, तव वहांसे रवाना होकर कौशाम्वीके वाहिर वनमें पहुंचे। कृष्णको प्यासने वहुत सताया। उन्होंने वलदेवसे जल लानेके लिये कहा—वलदेव श्रीकृष्णको वहींपर किसी वृक्षके नीचे वैठाकर आप जल लानेके लिये चले गये। वे वहुत दूर तक गये भी, परन्तु उन्हें कहीं जलका नाम निशान भी नहीं मिला। और आगे वढ़े। कुछ दूर जानेपर एक तालाव उन्हें दीख पड़ा। वहां पहुंचे और कमलपत्रका पात्र वनाकर उसमें जल भर क़र आने लगे।

उनके जल लेनेको चले जाने वाद इधर जो कृष्णके ऊपर वीती, उसे भी सुनिये—वलदेव जल लानेके लिये रवाना हुये और श्रीकृष्ण वृक्षकी ठंडी छायामें लेट गये। उन्हें निद्राने धर दवाया। अकस्मात् उधर ही जरत्कुमार आ निकला। उसने श्रीकृष्णके पांवमें कमलके चिह्नको देखकर समझा कि, यह हरिण सो रहा है और जो यह चमक रहा है, वह उसका नेत्र है। उसने वाण धनुषपर चढ़ाया और निशान लगाकर झटसे मार दिया। शरके लगते ही श्रीकृष्ण चिल्ला उठे और वोले कि हाय! किस दुराचारी पापीने यह शर मारा है? निर्जन वनमे मुझ अकेलेको मारकर उसने क्या लाभ उठाया? हाय, मैं मारा

गया ! उनके रोनेकी आवाज सुनकर जरत्कुमार दौड़ा आया। देखता है, तो श्रीकृष्ण सिसक रहे हैं। उससे यह घटना न देखी गई, सो मूर्च्छित होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और रो रो कर कहने लगा कि–हाय! तात! यह क्या अनर्थ हो गया? मैं आपहीके उद्देशसे तो द्वारका छोड़कर वनमें रहने लगा था। हाय! यहां भी पापी दैवने मुझे अपराधी बना ही दिया। हाय! मैं क्या करूं? कहां जाऊं? मुझ सरीखा दुष्कर्मी कौन होगा? सच है, पहले किये हुये कर्म नियमसे भोगने पड़ते हैं। जरत्कुमारने बहुत पश्चात्ताप किया और अपने अधम कर्मको धिक्कारा। भाईसे क्षमा करवाने को वह उनके पैरोंमें गिर पड़ा। श्रीकृष्णने उसे दोषी होनेपर भी क्षमा की और अपना भाई ही समझ वे उसके गले लग गये। बाद उन्होंने जरत्कुमारसे कहा कि भाई! यह तो निश्चय है कि, जीवको अपने किये कर्म अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। अस्तु इसका अब तुम दुःख न करो। जो होना था, वह हो चुका अब उसका शोक करना व्यर्थ है। मेरा कहना सुनो, अब तुम यहांसे जल्दी चले जाओ। क्यों कि बलदेव जल लेकर रास्तेमें आते ही होंगे। वे मेरी यह हालत देखकर तुम्हें नियमसे मार डालेंगे। जरत्कुमार बोला–नाथ! अब मुझे ही जीकर क्या करना है? मैं तो अपने प्राण यहीं पर दे दूंगा। फिर श्रीकृष्णने कहा–यह तुम्हारी भूल है, जो ऐसा विचार करते हो। तुम जाओ, क्यों कि तुम्हारे जीवित रहनेहीसे कुलकी रक्षा हो सकेगी। तुम्हें

कुलकी रक्षा करनी चाहिये। तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाना। उधर तुम्हें पाण्डव भी मिल जावेंगे। उन्हें यह सब हाल सुना देना। शायद् वे तुम्हारे कथनका विश्वास न करें। इसलिये यह मेरा कौस्तुभमणि साथ लिये जाओ। इसे दिखादेनेपर उन्हें निश्चय हो जायगा। जरत्कुमार श्रीकृष्णके कहे अनुसार कौस्तुभमणि लेकर पाण्डवोंके पास गया और जो हाल हुआ था, उसे उसने जैसाका तैसा कह सुनाया।

उधर श्रीकृष्णने परलोकयात्रा की। इतनेमें ही वलदेव भी जल लेकर आ गये। श्रीकृष्णको मृत्युंशय्यापर पड़े हुये देखकर एकदम हताश हो गये। उन्हें वहुत दुःख हुआ। जव उन्होंने उनके पैरकी ओर देखा, तो पैरमें उन्हें एक वड़ा भारी घाव दीख पड़ा। देखकर उन्होंने समझा कि किसी दुष्टने शरके द्वारा इनके प्राण लिये हैं। श्रीकृष्णकी यह अवस्था उनसे अधिक देरतक नहीं देखी गई। वे मुक्तकण्ठ होकर रोने लगे और कहने लगे कि-प्यारे, उठते क्यों नहीं? सोते २ वहुत देर हो गई। देखो, मैं कवसे जल लेकर आ गया हूं। यह जल लो और पीकर अपनी तृषाको शान्त करो। यदि तुम जल न पीओगे, तो मैं ही फिर क्यों कर पी सकूंगा? इसी तरह वहुत देर तक रोते रहे। उनके रोनेसे भी जव श्रीकृष्णकी यही हालत रही; तव वे उन्हें अपने कंधेपर रखकर वनमें घूमने लगे। कभी वे उन्हें सुलाते और उनके साथ आप सोते। कभी गोदमें ही सुलाये रहते। कभी वोलते और

कभी उनसे हँसी करते । श्रीकृष्णके शोकसे उनकी पागल कैसी हालत हो गई। सिंहकी तरह वनमें निर्भय होकर वे रहने लगे।

जरत्कुमार पाण्डवोंके पास पहुंचा। उसने यादवोंके ध्वंसकी कथा आदिसे लेकर अन्ततक ज्योंकी त्यों पाण्डवोंसे कह सुनाई। सुनकर पाण्डवोंको भी बहुत दुःख हुआ। यादवोंका असह्य शोक उनके हृदयमें लहरें लेने लगा। दैवका दुर्विपाक वड़ा ही विचित्र है। किसी तरह चित्तमें धीरता धारण की। अशौच मिटानेके लिये स्नान करनेको गये।

पाण्डवोंने जरत्कुमारको अपने ही पास रक्खा और कुछ दिन वीत जानेपर उसका विवाह भी कर दिया। वर्षाकाल वहींपर व्यतीत करके पाण्डव जरत्कुमारको साथ लिये हुये निकले और चारों ओर पृथ्वीमें घूमते हुये वहीं पहुंच गये, जहां श्रीकृष्णको लिये वलभद्र रहा करते थे। वलदेवको श्रीकृष्णके शवको लिये हुये देखकर वे बहुत दुःखी हुये। वे सव उनके पास जाकर वैठ गये। उन्हें देखकर बलदेवने समझा कि कोई वड़ी भारी सेना लेकर मुझसे लड़नेको आया है सो आप भी उनसे युद्ध करनेको खड़े हो गये। पाण्डवोंने यह देख जान लिया कि, अभी वलदेव अपने आपेमें नहीं है सो झटसे दौड़कर वे उनके पावोंमें गिर पड़े। उन्होंने वलदेवको बहुत कुछ दिलासा दी और श्रीकृष्णके शवका संस्कार करनेको कहा। परन्तु बलदेवने बिल्कुल ही हां न भरी। और

उल्टे वे शवको उठाकर चल दिये। यह देख एक देव सारथीका वेष धारण कर उनके समझानेको आया। उसने जमीनपर कमल वोये और उन्हें जलसे सींचने लगा, वर्तनमें जल भर उसे मथने लगा, वालू रेत लेकर उसे पेलने लगा, और गायके शृङ्गोको दोहने लगा। जब इतने पर भी वलदेवकी वुद्धि ठिकानेपर न आई, तव उसने पहले तो रथको वड़े २ विषम पर्वतोंपर चढ़ाया और पीछे जमीनपर उतारकर उसके टुकड़े २ कर डाले। यह देख वलदेव उसकी मूर्खतापर हँस पड़े और वोले तू वड़ा ही मूर्ख है। भला वता तो पहले तो रथको वड़ी भारी कठिनतासे पर्वतपर ले गया और पीछे उसे नीचे लाया। नीचे लाकर उसके टुकड़े २ कर दिये; इससे तूने लाभ क्या उठाया? देवने उत्तरमें कहा—पहले अपनी ओर तो देखो, फिर मुझे मूर्ख कहना। जरा स्वयं भी तो विचार करो कि—जव श्रीकृष्ण युद्धमें मरे नहीं थे, तव तो उन्हें तुमने मरे हुये समझ लिये थे और अव जो वनमें सोते हुयेको जरत्कुमारने शरसे मार दिये, सो कहते हो कि अभी मरे नहीं है। तुम वड़े हो, इसलिये मूर्खताका काम करते हुये भी मूर्ख नहीं और मैं मूर्ख हो गया? क्या इसे ही वुद्धिमानी कहते हैं, जो अपना दोष तो न देखना और दूसरेके दोष देखकर झटसे उसे दोषी कहने लगना? यह सर्वथा अनुचित है। सुनते ही वलदेवकी वुद्धि ठिकाने आई। वे उसी वक्त श्रीकृष्णके शवको पर्वतपर ले गये और उसका उन्होंने अग्निसंस्कार कर दिया। संसारकी नश्वरी

लीला देख उन्हें भी वहुत वैराग्य हुआ, सो उसी वक्त भगवानके पास जाकर उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली और वे कठिनसे कठिन तपश्चरण करके स्वर्गमें देव हो गये। इधर पाण्डवोंने भी नेमिनाथ भगवानके समवसरणमें जाकर उनके चरणकमलोंके साम्हने जिनदीक्षा स्वीकार की।

भाइयो! विचार करो, यादवोंने केवल भ्रमसे मदिरा पी थी, तब भी उनकी यह हालत होगई। फिर जो जान वूझकर पीनेवाले हैं. उनकी क्या दशा होगी? शराव दिखनेमें भी वहुत बुरी है। इसके पीनेवालोंकी जो बुरी गति होती है, उसके जानते हुये भी यह नहीं छोड़ी जाती, इसका वड़ा खेद है। मदिरा पीनेवालोंके लिये परलोकमें नरक जाना वताया गया है। नरकमें जो दुःख भोगने पड़ते हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। मद्य पीनेसे तो दुःख नियमसे उठाने ही पड़ते हैं, परन्तु जो पुरुष मद्य पीनेवालोंकी सङ्गति करते हैं, उन्हें भी दुःख उठाने पड़ते हैं। शराव अपवित्र होती है, वस्तुओंके सड़ानेसे वनती है, फिर भी उसे पीकर जो लोग अपनेको पवित्र कहते हैं, यह आश्चर्य है। मदिरा पीनेसे लाभ कुछ नहीं होता। उससे वहुतसे शारीरिक और मानसिक कष्ट सहने पड़ते हैं। मदिरापानहीसे यादवोंका सर्वनाश हुआ। द्वारका खाकमें मिल गई। यह प्रसिद्ध है। इसलिये सवोंको मदिराका पीना छोड़ देना चाहिये। आत्माका भला बुरी वातोंके छोड़नेसे ही होता है।

मदिरा पीनेसे दोनों लोक विगड़ते हैं। वहुत वड़े २ कष्ट सहने पड़ते हैं। इसलिये कुलीन पुरुषोंको कभी इसका स्पर्श भी न करना चाहिये। और सुनो, इन पापकर्मोंसे तुम्हारी रक्षा करनेवाला जिनधर्म है, उसका हृदयमें आदर करो। यही धर्म संसारदुःखोंका नाश करनेवाला और परम शान्तिका देनेवाला है।

सवैया।

कृमिरास कुवास सरापद है, शुचिता सव छूवत जात सही।
जिस पान किये सुधि जाय हिये, जननी जन जानत नारि यही
मदिरा सम और निषिद्ध कहा, यह जानि भले कुलमें न गही।
धिक है उनको वह जीभ जलो, जिन मूढ़नके मत लीन कही
[जैनशतक.]

इति तृतीय परिच्छेद ।

चौथी वेश्या व्यसन कथा।

श्रे णिकने गौतमगणधरको नमस्कार कर उनसे पूछा कि— स्वामी संसारमें वेश्याओंके द्वारा किसने किसतरहके दुःख भोगे हैं? गौतमगणधरने कहा— तुम्हें चारुदत्त वैश्यका चरित्र कहा जाता है। क्यों कि वेश्याके द्वारा उसने वहुत दुःख उठाये हैं।

अङ्गदेशके अन्तर्गत चम्पा नामकी सुन्दर नगरी है। उसके राजा, विमलवाहन थे। वे धर्मकार्यका सम्पादन वड़ी ही चतुरताके साथ करते थे। उनके राज्यमें एक सेठ रहता था। उसका नाम था भानुदत्त। भानुदत्तकी स्त्रीका नाम देविला था। देविलाके खोटे कर्मोंका वड़ा उदय था, जिससे उसे पुत्रका सौभाग्य प्राप्त न हो सका और उसीसे वह सदा कुदेवोंकी पूजा किया करती थी। एक दिन कुदेवोंकी पूजा करते समय उसे किसी मुनिने देख ली। मुनिने देविलासे कहा—तू यह मिथ्यात्व किसलिये सेवन करती है? तू नहीं जानती कि मिथ्यात्वके सेवनसे जीवोंको घोर दुःख उठाने पड़ते हैं। देविला मुनिराजसे वोली—नाथ! मैं क्या करूं? विवश हूं। केवल पुत्रके न होनेसे ही यह मिथ्यात्व मुझे सेवन करना पड़ता है। मुनिराजने फिर देविलासे कहा–पुत्रि, तू मिथ्यात्वको छोड़ और हृदयमें यह विश्वास कर कि तुझे

बहुत जल्दी पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। तू नहीं जानती कि कहीं कुदेवोंकी सेवासे भी लाभ हुआ है? किन्तु उससे उल्टा अपना सम्यक्त्व रत्न नष्ट हो जाता है। और जब कि जीवोंके पास सम्यक्त्वरूपी रत्न ही नहीं है जब यदि वे सुखकी इच्छा करें तो इसे केवल मृगतृष्णा कहनी चाहिये। अर्थात् सुखका कारण सम्यक्त्व है, सो यदि तू सुख चाहती है तो शुद्ध सम्यक्त्व स्वीकार कर। मुनि-राजका सदुपदेश सुनकर देविलाने सम्यक्त्व स्वीकार कर लिया और उनके वचनोंमें विश्वास कर वह अपने घर-पर चली गई। वहां सुखसे उसके दिन वीतने लगे।

कुछ दिन वीतनेपर उसके गर्भ रहा। जब गर्भ पूर्ण महीनेका हो चुका, तब देविलाने शुभ दिन और शुभ लग्नमें पुत्र जना। सच है जब पुण्यपुरुप पैदा होता है तब सब ही शुभ हो जाते हैं। भानुदत्तको पुत्रके जन्मकी बहुत खुशी हुई। उसने बहुत उत्सवके साथ पुत्रका जन्म महो-त्सव किया, गरीवोंको दान दिया और अपने बन्धुओंका वस्त्र आभरणादिसे उचित आदर किया।

वालक दिनों दिन वढ़ने लगा। धीरे २ जब वाल्या-वस्था पूर्ण हुई, तब उसे पिताने उपाध्यायके पास पढ़नेको भेज दिया। उपाध्यायने पहले ही उसे अक्षराभ्यास कर-वाया। अक्षराभ्यास वालकने बहुत जल्दी कर लिया। ठीक ही है, उत्तम बुद्धिके धारक पुरुषोंके लिये संसारमें कोई वात कठिन नहीं हुआ करती। चारुदत्तने थोड़े ही दिनोंमें सब शास्त्र पढ़ लिये। इस समय उसकी हरिसख, गौमुख

वराह, परंतप तथा मरुभूतिसे मित्रता हो गई थी। वह इन्हींके साथ २ पढ़ा करता था।

चम्पाके बाहिर एक मन्दिर नामका पर्वत है। उसपर श्रीयमधर मुनि मोक्ष गये थे। इसलिये वह सिद्धक्षेत्र गिना जाता था। यहांपर प्रतिवर्ष अगहनके महीनेमें यात्रा भरा करती थी। एक वक्त चम्पाके महाराज विमल-वाहन भी यात्राकेलिये चले। उनके साथ बहुतसे मनुष्य थे। उनमें चारुदत्त भी अपने मित्रोंके साथ मुनिकी वन्दना करनेको गया। महाराज और सभी लोगोंने चारुदत्तको अपने साथ आया हुआ समझकर विचारा कि— यह अभी बच्चा है, इसलिये इतने ऊंचे पर्वत पर नहीं चढ़ सकेगा सो उसे उन्होंने पर्वतके नीचे ही ठह-रनेको कह दिया और आप सब आगेको बढ़े।

चारुदत्त कुछ देरतक तो वहां ठहरा और जब देखा कि सब लोग चले गये हैं, तब आप भी अपने मित्रोंको साथ लेकर नदीके किनारेके बगीचेमें खेलनेको चल दिया। चारुदत्त वहां खेल रहा था कि इतनेमें उसके कानोंमें कहींसे रोनेकी आवाज सुन पड़ी। जिधरसे रोनेकी आवाज आ रही थी वह उधर ही चला। थोड़ी दूर जाकर देखता है, तो कदम्बके वृक्षकी डालीमें एक पुरुष कीलित होकर बंधा हुआ है और उसकी दृष्टि एक ढालपर लगी हुई है। यह देख चारुदत्त ढालके पास गया और उसे उसने उठाई तो उसके नीचे तीन गुटिका रक्खी हुई उसे मिलीं। उन्हें लेकर चारुदत्त उस कीलित पुरुषके

पास गया। गुटिकाओंमें एक गुटिका कीलोत्पाटन नामकी थी। चारुदत्तने उस गुटिकाको उस पुरुषकेलिये दे दी। उसके प्रभावसे वह उसी वक्त बन्धनरहित होगया। संजीवनी गुटिकासे उसकी मूर्च्छा जाती रही और व्रणसंरोहिणी गुटिकासे उसके शरीरमें जो घाव हो गये थे वे सब अच्छे हो गये।

कीलित पुरुषने अपनी अच्छी हालत देखकर हाथमें तलवार ढाल ली और वह वहांसे उसी वक्त चल दिया और थोड़ी ही देरमें एक पुरुषको बांधकर वहां ले आया। इस वक्त उसके साथ एक स्त्री भी थी। वह चारुदत्तके पावोंमें गिरकर बोला कि— स्वामी! मुझे कुछ प्रार्थना करनी है उसे आप सुनलें, तो बड़ी कृपा हो। चारुदत्तने उससे अपनी कथा कहनेको कह दिया। वह कहने लगा कि—

विजयार्द्धपर्वतकी उत्तरश्रेणीमें शिवमन्दिर नामक एक सुन्दर, विद्याधरोंके रहनेका शहर है। उसके राजाका नाम महेन्द्र विक्रम है और उनकी राणीका नाम है मत्सिका। उनका मैं एक पुत्र हूं। मेरा नाम है अमितिगति। मेरे मित्रोंका नाम धूम्रसिंह और अरिमुण्ड है। मैं एक दिन मित्रोंके साथ खेलता हुआ ह्रीमान नामके पर्वतपर चला गया। उसपर एक हिरण्यरोम नामका साधु रहता था। उसका जन्म क्षत्रीकुलमें हुआ था। साधुकी एक परम सुन्दरी कन्या थी। कन्याका नाम था सुकुमालिका। उसके सौन्दर्यपर आसक्त होकर मैंने उसके पितासे प्रार्थना की कि—इस सुन्दरीका विवाह आप मेरे साथ

कर दें, तो बहुत उत्तम हो। उसके पिताने मेरी प्रार्थना स्वीकारकर उसका विवाह मेरे साथ कर दिया। कन्याको देखकर धूम्रसिंहका भी मन डिग गया। उसके हर ले-जानेकी उसने बहुत कुछ कोशिश की परन्तु मेरे डरने उसे कृतकार्य न होने दिया। आज मैं अपनी स्त्रीको साथ लेकर यहींपर क्रीड़ा करनेको आया था। मैं तो अपने आमन्दमें निमग्न था, कि इतनेमें इस पापी कपटी मित्रने मुझे तो कील दिया और मेरी स्त्रीको यह लेकर रवाना हुआ। यह दुष्ट अब आपके सामने उपस्थित है। आप उचित समझें सो करैं, मैं तो आज आपहीकी कृपासे छूटने पाया हूं। नहीं तो न मालूम मेरी क्या हालत होती। आजसे लेकर मैं अब आपहीका होकर जीता रहूंगा। मैं आपका दास हूं। मेरे लिये आज्ञा कीजिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूं? उसकी यह हालत देख चारुदत्तने कहा—तुम ऐसा न समझो। हम तुम एक धर्मके पालक हैं। तुम्हारा हमारा समानधर्मीपना है। इसलिये तुम मेरे भाई हो। तुम आनन्दपूर्वक रहो, यही मेरा कहना है।

चारुदत्तने फिर दोनोंको समझाकर उनकी खूब मित्रता करवा दी। यह देखकर दोनोंको बहुत खुशी हुई। दोनोंने चारुदत्तका खूब सम्मान किया और उसके गुणोंका यशोगान करते हुये वे दोनों ही अपने २ घरपर चले गये। इनके चले जानेपर चारुदत्त भी अपने मित्रोंको साथ लेकर घर चला गया और फिर पहलेकी तरह पढ़नेमें

लग गया। पढ़ना उसका एक तरहका व्यसन सा हो गया था। इसलिये उसे सदा पढ़नेके सिवाय कुछ सूझता ही न था।

चम्पानगरीमें ही एक और सिद्धार्थ नामक सेठ रहता था। उसके सुमित्रा नामकी स्त्री थी। इनके एक सुन्दर कन्या थी। उसका नाम था मित्रावती। सिद्धार्थने मित्रावतीका विवाह चारुदत्तके साथ कर दिया। चारुदत्तने गृहस्थाश्रममें यद्यपि पदार्पण किया परन्तु तब भी उसे पढ़नेका इतना व्यसन था कि वह दिन रात पढ़नेके सिवाय अपना समय किसी दूसरे काममें न लगाता था। एक दिन उसकी स्त्री अपनी माताके यहां आई माताने उसे अलङ्कारादिसे सुसज्जित देखकर पूछा। प्यारी पुत्री! कारण क्या है जो ये भूषणादि कल शामको जैसे तेरे शरीरपर सजे हुये थे वैसे ही अब भी सजे हुये हैं और चन्दन भी वैसा ही लगा हुआ दीख पड़ता है। इनका तो सुरत समयमें नियमसे व्यतिक्रम हो जाना चाहिये। तुझपर तेरा प्राणप्यारा कुपित तो नहीं है? सुनकर मित्रावतीने उदासीनताके साथ मातासे कहा—माता! तुम प्राणप्यारेका मुझपर कुपित होना समझती हो, परन्तु यह बात नहीं है। उनका सब समय पढ़ने ही में जाता है, इसीसे उनका मेरा सम्बन्ध होने नहीं पाता। अस्तु हो, इसकी मुझे कुछ चिन्ता नहीं। पुत्रीके वचन सुनकर सुमित्राको क्रोध आया। वह उसीवक्त चारुदत्तकी माताके पास गई और उससे बोली

कि—तेरा पुत्र पढ़ा तो बहुत है, परन्तु मेरी दृष्टिमें तो वह अभी भी निरा मूर्ख ही है जो विवाह हो जानेपर भी स्त्रियोंके सम्बन्धकी बात तक नहीं जानता जिन पर कि सारे संसारकी स्थिति निर्भर है। यदि इसे इसीतरह दिन-रात पढ़ाना ही तुझे इष्ट था तो किस लिये तूने मेरी पुत्रीका विवाह इसके साथ करके उसे कुवेमें ढकेली। जब कि उसका विवाह हो गया है, तब तो उसे अब पढ़ना छोड़ देना चाहिये। चारुदत्तकी माताने सुमित्राको किसी तरह समझा बुझाकर अपने घरपर भेज दी और आप अपने देवरके पास जाकर उससे कहने लगी कि—रुद्रदत्त, देखो चारुदत्तका विवाह भी होगया परन्तु वह अभीतक यह भी नहीं जानता कि— भोग विलासादि क्या चीज हैं? इसलिये कोई ऐसा उपाय करना उचित है जो यह सब बातें जानकर वह भोगविलासकी ओर झुक जाय। सुनकर रुद्रदत्तने कहा—तुम इसकी चिन्ता न करो। मैं बहुत जल्दी इस बातका उपाय करता हूं। यह कहकर रुद्रदत्त वहांसे चल दिया।

इसी चम्पापुरीमें एक गणिका रहा करती थी। उसका नाम था वसन्ततिलका। उसके यहां एक परम सुन्दरी और सब प्रकारकी कलाओंमें सुचतुर वसन्तसेना वेश्या है। रुद्रदत्त अपने घरसे निकलकर उसीके यहां गया और उससे बोला कि— मेरे बड़े भाईका एक पुत्र है। उसका नाम है चारुदत्त। वह बहुत ही सुन्दर तथा सब कलाओंका पारगामी है परन्तु दुःख इस बातका है कि

वह कामक्रीड़ासे निरा अनभिज्ञ है। इसलिये तुम उसे अपनी सुन्दरतापर लुभाकर कुछ कामक्रीड़ा करना सिखाना। तुम्हें इसका उचित पारितोषिक मिलेगा। इतना कहकर रुद्रदत्त अपने घरपर चला गया।

रुद्रदत्तने महाराज विमलवाहनके पास जाकर उनसे भी चारुदत्तकी ये सब बातें कह सुनाई थी। उसके कहे अनुसार महाराजने अपने महावतसे यह कह दिया था कि जब रुद्रदत्त चारुदत्तको लेकर बाजारमें घूमनेको आवे, तब तुम वसन्तसेनाके घरके सामने दो हाथियोंको आपसमें लड़ा देना। लड़ाईके सबबसे रास्ता न मिलनेपर चारुदत्तको जबरन उसके घरका आश्रय लेना पड़ेगा। तब सहजहीमें हमारा काम सिद्ध हो जायगा।

रुद्रदत्त चारुदत्तको अपने साथ लेकर शहरमें घूमनेको निकला। वे दोनों वसन्तसेनाके घरके पास पहुंचे ही थे कि इतने हीमें दो हाथी लड़ते हुये वहीं आ गये। उनकी लड़ाईसे रास्ता बन्द हो गया। यह देख रुद्रदत्त झटसे चारुदत्तका हाथ पकड़कर उसे वसन्तसेनाके मकानमें लिवा ले गया। और चारुदत्तसे यह कहकर कि जबतक हाथियोंकी लड़ाई बन्द न हो, तबतक यहीं ठहरते हैं ठहर गया। और समय वितानेके बहानेसे वसन्ततिलकाके साथ जूवा खेलने लगा। खेलमें रुद्रदत्त कई वार हार गया। इससे चारुदत्त यह विचार कर कि हमारा काका ही क्यों हरवक्त हार रहा है? स्वयं खेलने लगा।

खेलते २ वसन्ततिलका चारुदत्तसे कहने लगी—हे सेठके पुत्र, देखो मैं तो अव वृद्धा हो चुकी हूं और तुम अभी युवा हो। इसलिये मेरे साथ तुम्हारा खेलना उचित नहीं जान पड़ता। मेरी एक परम सुन्दरी वसन्तसेना नामकी पुत्री है। उसके साथ तुम्हारा खेलना अच्छा शोभता है। सो अब तुम उसीके साथ खेलना। मैं उसे अभी बुलाये देती हूं। उत्तरमें चारुदत्त बोला—जैसा तुम उचित समझो मुझे कुछ इन्कार नहीं है। वसन्तसेना बुलवाई गई। चारुदत्त उसीके साथ खेलने लगा। खेलते २ वहुत देर हो गई। इतनेमें चारुदत्तको प्यास लग आई। उसने वसन्तसेना-से जल लानेको कहा। वसन्तसेना पहलेहीसे समझाई जा चुकी थी सो वह जलमें कुछ नशेकी वस्तु मिलाकर ले आई और उसे उसने चारुदत्तको पिला दिया। जल पीनेके कुछ ही देर बाद चारुदत्त कामसे पीड़ित हुआ। उसने अपने काकासे घरपर चले जानेकेलिये कहा। उसके वहांसे चले जानेपर आप वसन्तसेनाको मकानकी ऊपरी छतपर लेजाकर उसके साथ सुरतसुखका अनुभव करने लगा। ज्यों २ वह विषय सेवन करता गया, त्यों त्यों उसकी लालसा इतनी बढ़ती गई कि लगातार इसे वे-श्याके घर रहते हुये छह वर्ष वीत गये। वेश्याको इसने अपना वहुतसा धन भी दे डाला। जव उसके पिताको यह वात मालूम हुई कि पुत्र न तो अभी घरपर आया है और न उसकी आनेकी ही इच्छा है। उसने धन भी वहुत कुछ नष्ट कर डाला है। तव तो उन्हें वड़ी चिन्ता हुई।

उन्होंने अपने नौकरोंको चारुदत्तके बुलानेको भेजे, परन्तु चारुदत्तने आनेसे साफ इन्कार कर दिया। अबकी बार उसके पिताने यह कहला भेजा कि जाकर चारुदत्तको कह दो कि तुम्हारे पिता बहुत बीमार हैं, उनकी सम्हाल करनेवाला भी कोई नहीं है. सो तुम्हें चलना चाहिये। उसके भी उत्तरमें चारुदत्तने यह कह दिया कि उनके आराम करानेके लिये अच्छे २ विद्वान वैद्य बुलवायें जायं और उनकी इच्छानुसार धन देकर पिताजीके रोगका इलाज करवाया जाय। अन्तमें उसके पिताने देखा कि, अब यह व्यसनमें बहुत गर्क हो गया है, इसका छुटकारा होना सहज नहीं जान पड़ता। तब एक बार और उसके पास आदमी भेजे और उनके द्वारा यह कहलवाया कि तेरे पिताकी जीवनलीला समाप्त हो चुकी है, अब उनकी अन्तिम क्रिया तो कर आ इसपर भी चारुदत्तके कानोंपर जूं न रेंगी किन्तु और उल्टा कह दिया कि हमारे घरके लोगोंसे जाकर यह कह दो कि पिताजीके शवका चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओंसे वहि-संस्कार किया जावे। पुत्रकी यह हालत देखकर उसके पिताने सोचा कि, यह तो दुर्व्यसनकी पराकाष्ठापर पहुंच चुका है। अब इसका छुटकारा होगा यह असंभव है। अस्तु, जैसा जिसका कर्म है, उसीके अनुसार उसका भविष्य भी होगा। फिर मैं ही अपने कर्तव्य कर्मसे क्यों चूकूं। यह विचारकर चारुदत्तके पिताने दुःखोंकी नाश करनेवाली जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

उधर चारुदत्तकी हालत दिनों दिन अधिक २ बुरी होने लगी। बहुत सा धन तो उसने पहले ही बरबाद कर दिया था कुछ थोड़ा बहुत और बचा था सो उसे भी जल्दी नष्ट करडाला और जब पैसा पास न रहा तब अपना मकान भी गिरवी रख दिया। गर्ज यह कि उसका सब धन नष्ट हो चुका। उसकी माता एक अच्छे धनवानकी गृहिणी होकर भी आज वह दरिद्रा है। अहा! कर्मका परिपाक बड़ा विचित्र होता है। कौन जानता था कि इसकी यह हालत हो जायगी और इसे पैसे २ के लिये तरसना होगा। भाईयो, वेश्याके सेवनसे जो पराकाष्ठाकी बुरी दशा होती है उसका चारुदत्त बहुत उत्तम उदाहरण है। इसे देखकर क्या आप अपने सुधारकी इच्छा न करेंगे?

जब चारुदत्तके घरकी गरीबी हालत वसन्ततिलकाको मालूम हुई तब उसने अपनी पुत्रीको एकान्तमें बुलाकर उससे कहा कि– पुत्रि! अब चारुदत्त बिल्कुल दरिद्री हो चुका है। इसलिये अब इससे प्रीति छोड़कर किसी दूसरे धनिक युवाके साथ प्रेम करना तुझे उचित है। क्योंकि वेश्याओंका यही कर्तव्य है, कि वे कामदेवकी तरह सुन्दर होनेपर भी निर्धन पुरुषसे अपना प्रेम करना छोड़ दें। अभी तू बच्ची है। शायद यह बात तुझे मालूम न हो, इसलिये मैंने तेरा कर्तव्य तुझे सुझा दिया है। इसे तू पालन कर। संसारमें यह बात सभी जानते हैं कि वेश्यायें निर्धनके साथ प्रेम नहीं करतीं।

वसन्तसेना अपनी मााताका कहना सुनकर बोली कि· माता, यद्यपि तुम ठीक कहती हो, परन्तु मुझसे तो यह अनर्थ न हो सकेगा। इस जीवनमें तो यही दरिद्री मेरा स्वामी है। इसे छोड़ कर दूसरे को मैं. कभी नहीं चाहूंगी, यह मेरा दृढ़ संकल्प है। वसन्तसेना अपनी माताकी बुरी नियतका पता पागई, सो अब वह सदा चारुदत्तके ही पास रहने लगी। एक मिनटके लिये भी वह उसे छोड़ना नहीं चाहती थी।

एक दिनकी बात है कि चारुदत्त और वसन्तसेनाको पापिनी वसन्ततिलकाने भोजन करातेवक्त अधिक निद्रा आनेवाली वस्तु खिला दी। भोजन खाकर वे दोनों सो गये। उन्हें निद्राने जोरसे धर दवाया। निद्राके पराधीन देखकर उसने चारुदत्तके सब वस्त्राभूपण तो उतार लिये और उसे एक कपड़ेकी गठड़ीमें बांधकर पाखानेमें डाल दिया। जब प्रातःकाल हुआ, तब कुत्ते आकर उसका मुख चाटने लगे। चारुदत्त नशेमें ही बोलता है कि–प्यारी वसन्तसेने! मुझे इसवक्त नींद अधिक सता रही है, तुम जाओ और मुझे सोने दो। इस समय यहींपर एक पुलिसका कर्मचारी खड़ा हुआ था। उसने यह देखकर पाखानेमेंसे उसे बाहिर निकाला और उससे पूछा कि तू कौन है? और इस पाखानेमें कैसे गिरपड़ा है? यह सुनकर चारुदत्तकी कुछ अकल ठिकाने हुई। उसे जब यह जान पड़ा कि यह सब वसन्ततिलकाकी करतूत है और उसी पापिनीने मुझे पाखानेमें डाला है,

तब उसे बड़ी घृणा आई। आपपर जो जो आपत्तियां बीती थीं, वे सब उस कर्मचारीसे उसने कह सुनाई। सुनकर वह चला गया। इधर चारुदत्त भी वहांसे चलकर अपने घरपर गया। परन्तु द्वारपालोंने उसे घरमें न घुसने दिया। यह देख चारुदत्तने उनलोगोंसे कहा—तुम मुझे भीतर क्यों नहीं जाने देते हो? यह तो मेरा घर है। उत्तरमें नौकरोंने कहा—चारुदत्त! यद्यपि यह घर तेरा ही है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इसवक्त तो यह हमारे मालिकके यहां गिरवी रक्खा हुआ है। इसलिये इसपर अब तेरा अधिकार नहीं रहा। चारुदत्तने पूछा— खैर! क्या तुम यह जानते हो कि मेरी गरीब माता अब कहां रहती है? और मेरी स्त्रीकी क्या दशा है? यह सुन नौकरोंने उसकी माताके रहनेकी झोपड़ी उसे बतादी। चारुदत्त माताके पास गया और उससे मिला। अपने प्यारे पुत्रकी यह दशा देखकर माताको जो दुःख हुआ, वह लिखा नहीं जा सकता—यही हालत अपने प्राणप्यारे-को देखकर उसकी स्त्रीकी भी थी। माताने पुत्रको गले लगाया और स्नान कराकर उसके शरीरको शुद्ध किया। चारुदत्तने अपनी सब कथा माताको सुना दी। सुनकर माता बहुत खेदित हुई। सच है, जैसा स्नेह पुत्रपर माताका होता है वैसा किसीका नहीं होता। इसके बाद चारुदत्तने भोजनकर मातासे कहा— माता? हम लोग इस समय बड़ी बुरी हालतमें हैं। इसलिये मेरी इच्छा है कि मैं विदेश जाकर धनके कमानेका उपाय करूं। इस दरिद्र

दशामें मेरे द्वारा न तुम्हें ही कुछ सुख हो सकता है और न मुझे। इसलिये तुम मुझे जानेकी आज्ञा दो। जब चारुदत्तके विदेश जानेका हाल उसके मामाने सुना, तो वह–उसीवक्त वहां आया और चारुदत्तसे बोला—सुनो, तुम्हारी इच्छा व्यापार करनेकी है यह वहुत अच्छी वात है। तुम मेरे घर चलो। मेरेपास वहुत धन है। उससे अपनी इच्छानुसार व्यापार करना। चारुदत्तने उत्तरमें कहा मामाजी! आपका कहना वहुत अच्छा है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु मेरी इच्छा अव यहां रहनेकी नहीं है। मैं तो विदेश जाकर ही व्यापार करूंगा। चारुदत्तके मामाने फिर उससे अधिक आग्रह नहीं किया। इसके वाद चारुदत्त अपनी माता और स्त्रीको समझाकर घरसे वाहिर निकला। चारुदत्तका मामा भी प्रेमके वश हो उसके पीछे २ हो लिया। कुछ दिनोंके वाद वे दोनों एक नदीके किनारेपर पहुंचे। वहांसे वे अपने मस्तकपर गाजरकी गठड़ियें लादकर पलाश नगरमें पहुंचे और वहां वृपभदत्तकी दूकानपर वैठकर गाजर वेचने लगे। गाजरके व्यापार में इन्हें कुछ लाभ हुआ। उसके द्वारा कपास खरीद कर वे वैल लादने लगे। इन्हीं दिनोंमें इनकी एक विनजारेसे मित्रता हो गई। उसकी मार्फत व्यापारकर इन्होंने वहुत धन कमाया। परन्तु अशुभ कर्मने अभी भी इनका पीछा न छोड़ा। मार्गमें विचारोंको भीलोंने लूट लिये। और आगके लग जानेसे कपास भी जल गया। विचारे फिर भी दरिद्रीके दरिद्री होगये।

वहासे फिर वे दोनों मलय पर्वतपर वसे हुये शहरमें गये। वहां उनके भाग्यका सितारा चमका। उन्होंने वहां रहकर बहुत रत्न और धन उपार्जन किया। दैवकी कुटिलतासे अबकी भी उन्हें लुटेरोंने लूट लिये। वहांसे भी वे चले और कुछ दिनोंके बाद प्रियंगु शहरमें पहुंचे। यहां चारुदत्तके पिताका एक पुराना मित्र रहता था। उसका नाम था सुरेन्द्रदत्त। सुरेन्द्रदत्त अपने मित्रके पुत्रकी सहायता करनेके आशयसे उन्हें और दूर देश ले गया जहां व्यापारकी अच्छी उन्नति थी। उन्होंने वहीं बारह वर्षतक ठहर कर बहुतसा धन कमा लिया। अन्तमें जब धन जहाजपर लादकर वे अपने देशकी ओर लौटे कर्मयोगसे अबकी वार भी जहाज टूटकर जलमें डूब-गया। इन्होंने किसी लकड़ेके टुकड़ीको पाकर बड़ी ही मुश्किलसे समुद्रके बाहिर होकर अपने प्राणोंकी रक्षा की। अब न तो सिद्धार्थको यह पता है कि चारुदत्त किधर गया और न चारुदत्त अपने मामा सिद्धार्थ का हाल जानता है। सिद्धार्थ चारुदत्तका शोध लगाता हुआ धीरे २ अपने शहरमें आ पहुंचा। परन्तु वहां भी उसे चारु-दत्तका हाल नहीं मिला।

उधर चारुदत्त समुद्रसे बाहिर होकर जब वहांसे रवाना हुआ, तब उसे उदम्बरवती नगरीमें आकर अपने मामाका हाल मिला। चारुदत्तको सन्तोष हुआ। यहांसे चारु-दत्त रवाना होकर सिन्ध देशके अन्तर्गत सम्बरी नामक गांवमें आया। यहांपर किसीके यहां उसके पिताका बहुतसा

धन अमानत रक्खा हुआ था। चारुदत्तने पिताका धन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार और दान आदि पुण्य कर्ममें लगाना आरंभ किया। इससे उसकी कीर्ति सव जगह विस्तृत होगई। यह देख उसकी परीक्षा करनेको एक देव मनुष्यका वेष धारणकर जिनमन्दिरमें आया। उसके कुछ देर वाद चारुदत्त भी जव भगवानकी पूजन करनेको आया तव एक मनुष्यको वहां रोता हुआ देखकर उसने उससे पूछा—भाई! तुम किसलिये रो रहे हो? क्या किसी रोगसे तो तुम पीड़ित नहीं हो? उत्तरमें वह कपट-वेषी मनुष्य वोला—महापुरुष! आपसे कुछ प्रार्थना करनी है। उसे आप सुन लें, तो वड़ी कृपा हो। वह यह कि— मेरे शरीरमें शूलरोगकी वड़ी वेदना होरही है और वैद्यने उसका इलाज मनुष्यका मांस वताया है। दान देनेमें आपकी कीर्ति वहुत फैल रही है। यही सोच समझकर मुझे आपके पास आना पड़ा है। आप जीवोंके वड़े उपकार करनेवाले हैं। इसलिये मुझपर भी दया-करके अपने शरीरका मांस मुझे दान करें तो आपका वड़ा अनुग्रह हो। तभी मैं मरनेसे वच सकता हूं। नहीं तो मेरा जीना वड़ा ही मुश्किल है। मांसकी सुलभता न होने-से ही रो रहा हूं।

उसका कहना सुनकर चारुदत्तने उससे कहा— भाई! यदि यह वात ठीक है और वास्तवमें मनुष्यके मांससे तुम्हारी वेदना मिट सकती है तो मैं अपने शरीरका मांस तुम्हें देनेको तयार हूं। इतना कहकर चारुदत्तने

छुरीसे अपने पार्श्व भाग (पसवाड़े) का मांस काटकर उसे दे दिया। कपटी देव चारुदत्तकी इस अलौकिक धीरता और उपकार बुद्धिको देखकर चकित होगया। उसी समय अपना प्रत्यक्ष परिचय देकर वह चारुदत्तकी स्तुति करने लगा और उसके गुणोंकी प्रशंसा करके अपने स्थानपर चला गया। इधर चारुदत्त भी अपने पासके सब धनको दानादि उत्तम कर्मोंमें लगाकर राजगृहकी ओर चल दिया। वहां उसे एक दण्डी साधु मिला। साधुके पूछनेपर चारुदत्तने अपनी आदिसे अन्ततक सारी कथा कह सुनाई। दण्डीने उसकी हालत सुनकर ऊपरसे दुःख प्रकाशित करके उससे कहा—तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो। मेरे साथ पीछे २ चले आओ। यहांसे थोड़ी दूरपर एक रसकूपिका है। उससे मनुष्योंको उनकी इच्छाके अनुसार धन मिल सकता है। चारुदत्त लोभके वश होकर दण्डीके पीछे २ रसकूपिकाके पास पहुंच गया। दण्डीने एक खाटपर चारुदत्तको बैठाकर और उसके हाथमें एक तुम्बी देकर कह दिया कि जब तुम भीतर पहुंच चुको, तब उसमें रसभरकर उसे खाटपर रख देना। पहले रसतुम्बीको रस्सीसे बाहिर निकालकर पीछे तुम्हारे निकालनेके लिये खाटको कूपिकामें उतार दूंगा सो तुम उसपर बैठ जाना। फिर मैं तुम्हें जल्दी बाहिर निकाल दूंगा। चारुदत्त उसकी कपटवृत्ति न समझकर बोला—महाराज! जैसा आप कहते हैं मैं भी वैसा ही करूंगा। इतना कहकर चारुदत्त खाटके ऊपर बैठ

गया। दण्डी साधुने उसे तुम्बी देकर कुवेके भीतर उतार दिया। नीचे पहुंचकर ज्यों ही रसभरनेको चारुदत्तने तुम्बीको आगे बढ़ाई कि इतनेमें एक मनुष्यने (जो पहले-हीसे कुवेके भीतर बैठा हुआ था) कहा कि क्या तू भी उसी नीच दण्डी साधुके जालमें फंस गया है? जान पड़ता है, उसीने तुझे भी इसमें उतारा है। मुझे भी उसी पापीने रसका लोभ दिखलाकर इस कुवेमें उतार दिया है। चारुदत्तने उसकी यह हालत देखकर पूछा—तुम कौन हो? और क्यों इसमें डाले गये हो? वह बोला—मित्र! जो कुछ मुझपर बीती है उसे तुम यदि सुनना चाहते हो तो सुनो—मुझे उसके सुनानेसे कुछ इन्कार नहीं है। वह यों है—

मैं उज्जयिनीमें रहता हूं और जातिका वैश्य हूं। जब कर्मोंकी विचित्रतासे मुझे दरिद्रताने आ घेरा, तब मैं इधर उधर घूमने लगा। घूमते हुये मुझे इन साधु महाराजके दर्शन हो गये। ये धनका लोभ दिखाकर मुझे यहां लिवा लाये। इनके कहनेसे मुझे इस कुवेमें उतरना पड़ा। जब मैं नीचे पहुंच गया, तब तुम्बीमें रसभर उसे साधुके कहे अनुसार मैंने खाटपर रख दी। साधु महाराजने पहले तुंबीको झटसे बाहिर निकाल ली और बाद मेरे निकाल-नेके लिये खाटको कुवेके भीतर उतारी। मैं खाटपर बैठ गया। जब खाट आधी दूर आ चुकी, तब उसकी रस्सी काट दी। मैं धड़ामसे कुवेमें गिर पड़ा। परन्तु दैवकी विचित्रतासे किसी तरह बचकर यहां बैठा हुआ हूं। यही

कारण मेरे यहां आनेका है। अपना हाल कहनेके वाद उसने चारुदत्तसे उसके आनेका हाल पूछा। चारुदत्तने सव वातें ठीक २ कह दीं। इसके वाद चारुदत्तने उससे यह और पूछा कि—अव तुम यह वताओ कि मुझे क्या कर्त्तव्य है? उत्तरमें उसने कहा—मित्र! तुम यह करो कि—पहले तो तुम्बिका भरकर खाटपर रख दो। जव वह पापी इसे निकालकर खाटको तुम्हारे निकालनेके लिये भीतर उतारेगा, तव उसपर तुम एक पत्थर रख देना। पत्थरके वजनको वह तुम्हारा वजन समझकर रस्सी काटकर चल देगा। ऐसा करनेसे तुम अपनेको वचा सकोगे। यही हुआ भी—दूसरी वार पत्थर रक्खी हुई खाटकी रस्सी काटकर वह पापी चल दिया। उसके चले जानेपर चारुदत्तने उससे फिर कहा—क्या कोई ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा मैं इसके वाहिर हो सकूं? वह वोला—मध्याह्नकालमें इसका रस पीनेको एक गोह आया करती है, सो जव वह आवे तव तुम उसकी पूंछ पकड़कर वाहिर निकलनेकी कोशिश करना। आगे तुम्हारा भाग्य है। इसे छोड़कर और उपाय मुझे सूझ नहीं पड़ता। इतना कहकर वह चारुदत्तसे कहने लगा कि मित्र! मुझे इस समय वड़ी भारी वेदना हो रही है। मैं मरा ही चाहता हूं। यदि हो सके, तो मुझे कल्याणका उपदेश सुनाओ। चारुदत्तने उसकी यह दशा देखकर उसे नमस्कार मंत्र सुनाया। सुनते २ शुद्ध परिणामोंके साथ उसने

प्राण विसर्जन कर दिये। महामंत्रके प्रभावसे उसे स्वर्गमें देवपद मिला।

उधर जब मध्याह्नकालका समय आया, तब प्रतिदिनके अनुसार एक गोह उस कूपिकाका रस पीनेको आई और रस पीकर जब वह पीछी लौटने लगी, तब उसकी पूंछको चारुदत्तने पकड़ ली। गोहके साथ २ चारुदत्त भी ऊपरको चढ़ने लगा। चढ़ते २ केवल एक ही हाथ और ऊपर चढ़नेमें बाकी रह गया था कि गोह अपना बिल आजानेसे उसमें घुसगई और चारुदत्त उसकी पूंछ पकड़े वहीं ठहर गया। इसी समय कुछ बकरियें चरतीं २ कुवेके किनारेपर होकर जा रही थीं कि, इतनेमें एक बकरीका पांव खिसलकर बिलके ऊपर जा पड़ा। यह देख चारुदत्तने उसका पांव बड़े जोरसे पकड़ लिया। बकरी मैं मैं कहने लगी। उसका मिमयाना सुनकर बकरियोंका मालिक दौड़ आया। बकरीका पांव बिलमें फंसा हुआ देखकर उसने वहांकी जमीन खोदनी आरंभ की। यह देख चारुदत्त बोला—भाई! जरा धीरे २ खोदना। उसने धीरेसे खोदकर चारुदत्तको बाहिर निकाल दिया। बाहिर निकलते ही चारुदत्त जी लेकर भागा। चारुदत्तका ऐसा करना उसे बड़ा ही आश्चर्यकारक जान पड़ा। परन्तु फिर वह अधिक हाल जाननेकी कोशिश न कर अपने घर चला गया।

चारुदत्त निकलकर वहांसे भागा ही था कि, एक भैंसेने उसका पीछा किया। उसके पीछे २ आनेसे

चारुदत्त वहुत कुछ घवराया । रास्तेमें चारुदत्तको एक गिरि-गुहा दीख पड़ी । वह उसमें घुसा ही चाहता था कि उसके द्वारपर ही एक वड़ा भारी भयंकर अजगर उसकी दृष्टिमें आया । परन्तु भैंसेके भयके मारे वह कुछ विचार न कर अजगरके मस्तकपर पांव देकर गुहाके भीतर जा घुसा । अपने सिरपर वजनके पड़नेसे अजगर जाग गया । जागते ही उसकी दृष्टि गुहाके द्वारपर खड़े हुये भैंसेपर पड़ी । अजगरने उसकी वलि करनी चाही कि भैंसा भी विगड़ खड़ा हुआ । दोनोंमें कुछ धींगा-धींगी होने लगी । इतनेमें मौका देखकर चारुदत्त गुहासे भाग निकला । वहांसे निकल जानेपर भी विचारेको आपत्तिसे छुट्टी नहीं मिली । गुहासे निकलते ही कालकी तरह उसके पीछे दो भैंसे और हो लिये । उनके भयसे वह एक ऊंचे वृक्षपर चढ़ गया । जव वे भैंसे निरुपाय होकर लौट गये, तव चारुदत्त भी वृक्षपरसे उतरकर एक नदीके किनारेपर आया । वहांपर इसे हरिसिख आदि इसके मित्र भी मिल गये जो इसको ढूंढनेके लिये इधर उधर घूम रहे थे । चारुदत्त इन्हें देखकर वहुत खुश हुआ और प्रेमपूर्वक सवसे गले लगकर मिला । इसके वाद वहींपर सवने एक ही साथ वैठकर भोजन किया और भोजन किये वाद वे अपने २ सुख दुःखकी कहानी परस्परमें एकसे एक कहने लगे । वह दिन सवका वड़े आनन्दके साथ वीता ।

दूसरे दिन वे सव मित्र वहासे श्रीपुरकी ओर रवाना

हुये। श्रीपुरमें चारुदत्तके पिताका मित्र रहा करता था। उसका नाम था प्रियदत्त। उसने चारुदत्तको अपने मित्रका पुत्र समझकर उसका बहुत कुछ सत्कार किया और वहांसे चलते समय उनके साथ बहुतसी भोजन-सामग्री रख दी जिससे उन्हें खाने पीनेकी तकलीफ न उठानी पड़े। चारुदत्त वगैरहने उनके पास जो धन था उसके द्वारा श्रीपुरसे कांचकी चूड़ियें खरीद की और उन्हें गान्धार देशमें लेजाकर वेची। यह देख एक मनुष्यने उनसे पूछा कि— तुम कौन हो? और किस लिये तकलीफ सहकर पृथ्वी परिभ्रमण करते हो? उत्तरमें रुद्रदत्तने अपनी जितनी दुःख कहानी थी, वह सब उस पुरुषसे कह सुनाई। उनकी कहानी सुनकर उस पुरुषने इनके साथ सहानुभूति प्रकाशकर कहा कि—

यहांसे थोड़ीं दूर चलकर एक वहुत ही संकीर्ण मार्ग मिलता है। उसे वकरोंपर चढ़कर पार करना पड़ता है। क्यों कि वह पर्वत प्रदेश होनेसे, विना वकरोंकी सहायताके पार नहीं किया जा सकता। सो जब तुम वकरोंके द्वारा मार्ग तय करके निर्दिष्ट स्थानपर पहुंच चुको, तब उन सब वकरोंको मार डालना और उनके चमड़ेकी भाथड़ियें वनाकर उनके भीतर घुस जाना और उन्हें भीतरसे सी लेना। उन्हें मांस पिण्ड समझकर वहुतसे गृद्ध आवेंगे और उठा २ कर रत्नद्वीपमें ले जावेंगे। जव वे वहां पहुंच जावें और अपनी चोंचोंसे उन्हें फाड़ने लगे, तव तुम छुरीसे चीरकर उनके वाहिर निकल आना।

तुम्हें देखकर डरके मारे वे सब गृद्ध भाग जावेंगे। फिर तुम लोग अपनी इच्छानुसार वहांसे रत्न ले लेना। रुद्रदत्त उसकी वात सुनकर वहुत खुश हुआ। उसने उस मनुष्यके कहे अनुसार वकरे खरीदकर चारुदत्तसे कहा कि-यहांसे अपनेको पर्वतपर चलकर जिन मन्दिरोंकी वन्दना करनी चाहिये। परन्तु वह मार्ग वहुत संकीर्ण है। इसलिये वकरोंपर चढ़कर चलना होगा। वकरोंके मारनेका हाल चारुदत्तको कुछ भी मालूम न था। उस मनुष्यने ये सब वातें रुद्रदत्तसे कहीं थीं। रुद्रदत्तने चारुदत्तको जिन चैत्यालयकी वन्दनाके वहानेसे पर्वतपर चलनेको राजी कर लिया। सच है मायावी पुरुष हरेकको अपने पंजेमें फंसा लेते हैं।

वे सब वहांसे रवाना होकर वहींपर पहुंचे जहांसे पर्वतपर चढ़ना पड़ता था। रुद्रदत्तने उन लोगोंसे कहा—अभी आप लोग यहीं ठहरें क्यों कि आगे रास्ता केवल चार अंगुल चौड़ा है। मैं थोड़ी दूर जाकर देख आता हूं कि साफ रास्ता हम लोगोंको कहांसे मिलेगा। और मुझ अकेलेके जानेसे किसी तरहकी हानि भी न होगी। मैं वहुत जल्दी पीछा लौटकर आ जाऊंगा। सुनकर उन सवोंने रुद्रदत्तसे कहा कि—आपको जाना उचित नहीं है, हम लोग ही जाते हैं। हम लोगोंको कोई भारी आपत्तिका सामना भी यदि करना पड़े तो उससे उतनी हानि नहीं होगी कि जितनी आप अकेलेसे होजानी संभव है। यह है भी ठीक कि, आलसी और अकर्मण्य पुरुष वहुत

भी जीते रहें परन्तु उनसे उतना लाभ नहीं पहुंच सकता जितना कर्मवीर एक ही पुरुषके जीनेसे पहुंच सकता है। इन लोगोंके पारस्परिक वार्त्तालापको सुनकर चारुदत्त बोला—भाइयो! आप लोगोंका जाना मुझे उचित नहीं जान पड़ता। क्यों कि एकके लिये बहुतोंका नाश होना अच्छा नहीं है। इसलिये आप तो यहीं कुछ देरतक विश्राम कीजिये। मैं जाता हूं और सुगम मार्ग देखकर अभी ही लौटे आता हूं। यह कहकर चारुदत्त जिन भगवानकी हृदयमें आराधना कर बकरेपर चढ़ा और बहुत जल्दी उस चार अंगुल चौड़े रास्तेको पारकर गया। चारुदत्त सुमार्ग देखकर जबतक वापिस आता है कि उसके पहिले ही रुद्रदत्तादि उसके आनेमें देरी समझकर उसी ओर चल पड़े। वे आधी दूर पहुंचे होंगे कि उधरसे चारुदत्त भी आ गया और इन्हें देखकर बोला कि—मैं तो आ ही रहा था, आप लोग वहीं क्यों न ठहरे? इतनी जल्दी करके आपने उचित नहीं किया। उत्तरमें वे कहने लगे कि—तुम्हें इतनी देरी हो गई। इसीसे यह समझकर कि कहीं तुमको किसी आपत्तिका तो सामना नहीं करना पड़ा है—हम लोग अधिक देरतक न ठहरकर तुम्हारे समाचार लेनेको चले आये। चारुदत्तने कहा—जिस भयसे आप भीत हुये हैं जान पड़ता है दैवने उसीका सम्बन्ध मिलाया है। अस्तु जो हो, अब चिन्ता करनेसे कुछ लाभ नहीं निकल सकता। कोई बचनेका उपाय करना चाहिये। वे लोग चारुदत्तसे बोले कि, महाभाग! ठहरिये,

हम लोग पीछे लौटते हैं। चारुदत्त यह कहकर कि-आपको लौटना उचित नहीं है आप स्वयं लौट गया। सच है, पुण्योदय सब जगह सहायी होता है। चारुदत्तके लौटते ही वे सब भी उसके पीछे २ चलकर पर्वतपर पहुंच गये। पर्वतपर पहुंचकर चारुदत्तने उन लोगोंसे पूछा- भाईयो! तुमने पर्वतपर जिनमन्दिर बतलाये थे वे दिखाई तो नहीं पड़ते, कहो तो कहां है? उत्तरमें रुद्रदत्तने कहा अभी कुछ आगे हैं। इसलिये अब हमको यहां कुछ विश्राम कर लेना चाहिये। विचारे भोलेभाले चारुदत्तने उन लोगोंके कहनेको ठीक समझकर निद्रा देवीके आराधनमें अपनेको लगाया। बहुत दूरसे आया था, सो थक जानेके कारण उसे निद्रा आ गई। इसे निद्रित देखकर उन पापियोंने सब बकरोंको मारडाला। सबसे पीछेसे उन्होंने चारुदत्तके बकरेको मारना आरंभ किया ही था कि इतनेमें उसके मिमयानेसे चारुदत्तकी निद्रा खुल गई। वह इस भीषण हत्याकाण्डको देखकर घबरा उठा। उसने उन पापियोंसे कहा—अरे! नीचो! तुमने इन निरपराधी जीवोंकी हत्या करके क्या लाभ उठाया? कहो तो इन बेचारोंने तुम्हारा क्या नुकसान किया था? तुम बड़े ही निर्दयी हो। जरा सोचो तो, यदि कोई इसीतरह तुम्हें भी मार डाले तो, क्या तुम दुःखी न होओगे? तुम मनुष्य नहीं हो किन्तु मनुष्योंमें राक्षस हो! धिक्कार है तुम्हारे जीवनको जो मनुष्य होकर भी तुम्हारेमें दयाका अंकुरतक नहीं दीख पड़ता। याद रक्खो, यह पाप तुम्हें उसी अवस्थापर पहुं-

चावेगा, जिस अवस्थापर तुमने इन निरपराध जीवोंको पहुंचाये हैं। इसीतरह चारुदत्तने उन्हें वहुत कुछ धिक्कारा। चारुदत्तका वकरा अभी कुछ जीवित था, उसे इस हालतमें देखकर चारुदत्तने नमस्कार मंत्र सुनाया जिसके प्रभावसे वह मरकर स्वर्गमें देव हो गया। चारुदत्तकी फटकार सुनकर इन लोगोंने जिस कारणसे वकरोंकी हत्या की थी, वह चारुदत्तसे कह सुनाया। चारुदत्तको इनकी क्रूरतापर दुःख तो वहुत हुआ, परन्तु फिर अगत्याइसे भी इनके साथ २ उस वकरेके चर्मकी भाथड़ी वनानी पड़ी। क्यों कि ऐसा न करनेसे उसके वचनेका कोई उपाय नहीं था। भाथड़ीमें घुसकर इन्होंने उसके मुहँको भीतरसे सी लिया। कुछ देर वाद मांसके लोभसे वहुतसे गृद्ध पक्षी वहांपर एकत्रित होगये और भाथड़ियोंको अपनी २ चोंचोंमें दवाकर ले उड़े। इनमें चारुदत्तकी भाथड़ी अन्धे गृद्धके हिस्सेमें पड़ी थी। वह उसे ही लेकर उड़ा। ये सव पक्षी समुद्रमें उड़े चले जा रहे थे कि इतनेमें एक दूसरा ही पक्षी आ गया और भाथड़ी छुड़ानेको इन पक्षियोंसे लड़ने लगा। उसे सवके साथ लड़ता हुआ देखकर अन्धा गृद्ध भागा। जल्दी २ भागनेसे भाथड़ी उसके मुहँसे समुद्रमें गिर पड़ी। वह उसे उठाकर फिर भागने लगा। भाथड़ी फिर भी गिर पड़ी। इसीतरह उसकी भाथड़ी समुद्रमें सात वार गिरी; परन्तु तव भी उसने उसे किसीतरह लेजाकर रत्नद्वीपकी चूलिकापर रख दी और जव वह खानेके लिये उसे

चोंचोंसे फाड़ने लगा, तव चारुदत्तने भाथड़ीको चीर डाली और उसके भीतरसे आप वाहिर निकल आया। एकाएक भाथड़ीमेंसे मनुष्यको निकलता हुआ देखकर पक्षी मारे डरके वहांसे उसी वक्त उड़ गया।

उधर उन रुद्रदत्तादिकोंको वे पक्षी किधर उड़ा ले गये, इस वातका पता तक न लगा। चारुदत्त रत्नद्वीपमें पहुंच चुका। उसे वहां एक सुन्दर जिनमन्दिर दीख पड़ा। वह मन्दिरमें गया और जिन भगवानकी भक्तिपूर्वक वन्दना और पूजा कर वाहिर आया। वहीं एक मुनिराज विराजे हुये थे। चारुदत्तने उनकी वन्दना की। मुनिराजने चारुदत्तको धर्मवृद्धि देकर कुशल प्रश्नके वाद उससे पूछा-चारुदत्त! तुम इस वक्त कहांसे चले आते हो? चारुदत्त मुनिराजके मुँहसे अपना नाम सुनकर वड़ा विस्मयमें पड़ गया। वह मुनिसे कहने लगा कि—स्वामी! आपने मुझे क्यों कर जाना? क्या कभी आपने मुझे कहीं देखा है? उत्तरमें मुनिने कहा-चारुदत्त! क्या तुम मुझे नहीं जानते? मैं वही अमितिगति विद्याधर हूं जिसे तुमने एक वक्त छुड़ाया था। तुमहीने तो मुझे वन्धनरहित कर मेरी स्त्री मेरे सुपुर्द की थी। तुम्हारी ही कृपासे मैंने पुत्रपौत्रादि सहित वहुत दिनतक राज्य सुख भोगा और अव पुत्रको राज्यभार देकर संसार दुःखके नाश करनेको यह पवित्र जिन दीक्षा ग्रहण कर ली है। मुनिराजने अपना वृत्तान्त पूरा ही किया था कि इतनेमें विमानमें वैठे हुये दो विद्याधर वहां आये। इनके नाम

थे-सिंहग्रीव और वराहग्रीव। ये दोनों ही गृहस्थावस्थाके मुनिके पुत्र थे और इस समय ये अपने पिताकी वन्दनाके लिये आये थे। इन्होंने पहले ही जिन भगवानकी भक्तिपूर्वक पूजा की और बाद ये अपने पिताकी वन्दना करनेको आये। आते ही इनसे मुनिराजने कहा—पुत्रो! जिस पवित्र पुरुषको तुम देख रहे हो, वह मेरा बड़ा भारी मित्र है। इसका नाम है चारुदत्त। पहले तुम इसे 'इच्छाकार' करो। मुनिराजके कहे अनुसार उन दोनोंने चारुदत्तको इच्छाकार कर मुनिराजसे पूछा—नाथ! ये कौन हैं? कहांके रहनेवाले हैं? और आपकी इनकी मित्रता कैसे हुई? यह सब जाननेकी इच्छा है। पुत्रोंके प्रश्नके उत्तरमें मुनिराजने बीता हुआ सब हाल उनसे कह सुनाया। सुनकर वे दोनों भाई बहुत खुश हुये और चारुदत्तसे बहुत प्रेम करने लगे।

इसी अवसरमें वहींपर दो देव विमानमें बैठकर आ उपस्थित हुये। उन्होंने पहले ही जिन भगवानकी वन्दना की फिर चारुदत्तकी और उसके पीछे मुनिकी। यह देख सिंहग्रीव देवसे बोला—क्या स्वर्गके सभी देव तुम सरीखे ज्ञान शून्य हैं? सुनकर देवोंने कहा—भाई! बताओ कि तुमने यह बात कैसे जान पाई कि स्वर्गके देवता ज्ञानशून्य हुआ करते हैं? सिंहग्रीवने उत्तरमें कहा—तुम ज्ञानशून्य हो या ज्ञानवान्, यह तुम्हारे वर्त्तावहीसे स्पष्ट जान पड़ता है। देखो! तुम्हें पहले मुनिको वन्दना करनी चाहिये थी सो ऐसा न कर तुमने पहले गृहस्थकी वन्दना

की। यह सुन देवोंने कहा तुमने कहा, वह ठीक है। परन्तु चारुदत्त हमारा प्रथम गुरु है। इसी कारण हमने इसे पहले वन्दना की है। सिंहग्रीवने कहा—अच्छा यही सही परन्तु बतलाओ तो, चारुदत्त तुम्हारा प्रथम गुरु कैसे हैं? उत्तरमें वह देव जो बकरेका जीव मरकर देव हुआ बोला—

काशीमें एक सोमशर्म ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला था। इनके भद्रा और सुलसा नामकी दो कन्यायें थीं। सोमशर्मने इन्हें सब शास्त्रोंमें अच्छी निपुण कर दी थीं। ये अपने विद्याके अभिमानमें चूर होकर कुमारी अवस्थाहीमें साध्वी हो गईं। इनकी बहुत कुछ प्रसिद्धि सुनकर याज्ञवल्क्य साधु शास्त्रार्थ करनेकी इच्छासे इनके पास आया और शास्त्रार्थमें सुलसाको जीतकर और उसके साथ अपना विवाह कर सुखपूर्वक इसीके पास रहने लगा। कुछ दिनोंबाद इनके एक पुत्र हुआ। इन पापियोंने लज्जाके भयसे उस बच्चेको पीपलके वृक्षके नीचे अकेला डाल दिया और आप दूसरी जगह चल दिये। सुलसाकी दूसरी बहन भद्रा उस अनाथ बच्चेको वहांसे अपने घरपर ले आई और उसका पालन पोषण करने लगी। भद्राने बच्चेको पीपलके फलको मुहँमें लेते हुये देखा था, इसलिये उसका नाम भी उसने पिप्पलाद रख दिया। जब बच्चा कुछ बड़ा हुआ, तब भद्राने उसे पढ़ाना आरंभ करा दिया। कुछ वर्षोंमें वह पढ़कर अच्छा विद्वान् हो गया। एक दिन न जाने बच्चेके दिलमें

क्या तरङ्ग उठ आई सो उसने भद्रासे पूछा कि–माता! मेरा पिप्पलाद नाम.क्यों रक्खा गया? और मेरे पिता कहां है? मुझे तुम यह सब हाल सुना जाओ। भद्राने उसका अधिक आग्रह देखकर उसे पहलेका सब हाल वैसाका वैसा ही सुना दिया। पिताकी इस निर्दयतापर उसे बहुत खेद हुआ, परन्तु फिर भी उसे वह सहन कर गया। केवल उसकी यह इच्छा बनी रही कि किसी तरह पिताको नीचा जरूर दिखाना चाहिये। यह विचारकर वह पिताके पास पहुंचा और बोला कि–मुझसे शास्त्रार्थ करिये। याज्ञवल्क्यको भी अपनी विद्याका घमण्ड तो था ही। उसपर भी इस छोटेसे लड़के साथ शास्त्रार्थ करना उसे कोई भारी काम नहीं जान पड़ता था। उसने पिप्पलादका कहना स्वीकार कर शास्त्रार्थ करना आरंभ किया। परन्तु पिप्पलादके सामने उसका सब अभिमान दूर हो गया। उसने छोटेसे बालकसे अपनी पराजय स्वीकार की। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पिप्पलादने पिताको नीचे दिखाकर बाद अपनी सारी कथा उसे कह सुनाई। पुत्रकी यह हालत देखकर याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुआ। वह उससे गले लगकर मिला। आज बहुत दिनों-बाद फिर भी पिताने छोड़े हुये पुत्रका मुहँ देखा। इस शास्त्रार्थमें विजय पानेसे पिप्पलादकी बड़ी भारी प्रसिद्धि हो गई। वह सब याज्ञिक ब्राह्मणोंमें प्रधान गिना जाने लगा। उसीका मैं शिष्य हो गया। गुरुजीने सब यज्ञकर्मके करनेकी मुझे ही आज्ञा दे रखी थी। उनकी आज्ञा-

नुसार सब कर्म मुझे ही कराने पड़ते थे । यज्ञमें बकरे भी मारे जाते थे। वह भी काम मुझे ही करना पड़ता था। मैंने असंख्य बकरोंकी जानें लीं। इसी पापसे मुझे नरकमें जाना पड़ा। वहां मैंने बहुतसे दुःख भोगे। जब नरकस्थिति पूरी हो चुकी तब वहांसे निकलकर मैंने बकरेकी पर्याय धारण की। मुझे ब्राह्मणोंने बहुत वक्त यज्ञमें मारा। अन्तमें कुछ ऐसा ही पुण्य कर्मका उदय हो आया जो हुआ तो बकरा ही परन्तु अबकी वार मैं इस पुण्य पुरुषके हाथ पड़ गया।

ये लोग रत्नद्वीपको जा रहे थे। रास्तेमें एक पर्वतपर पहुंचकर इनके साथी रुद्रदत्तने छह बकरोंको तो वहां मार डाले। अन्तमें मेरा भी नम्बर आया। पापी रुद्रदत्तने मेरे गलेपर भी छुरी चला दी। मेरे भाग्यसे इस महात्माकी नींद दूर गई। इसने मुझे मारते हुये देखकर उस पापीको बहुत धिक्कारा। उस वक्त मैं प्रायः मर ही चुका था केवल कुछ ही श्वासोच्छ्वास बाकी थे। यह देख इस दयालुने मुझे महा मंत्र सुनाया। मेरा भी अच्छा होनहार था इसीसे मंत्रके ध्यानमें उपयोग लग गया। अन्तमें मरकर मुझे देवपद मिला। अवधिज्ञानके द्वारा इस उपकारकका उपकार याद कर मैं इसकी वन्दना करनेको आया हूं। यह विभवका पाना इसी की कृपाका फल है। इसी लिये मैंने इसे अपना आदि गुरु समझकर पहले वन्दना की है। इसके बाद ही उसका दूसरा साथी भी बोल उठा कि चारुदत्त मेरा भी आदि गुरु है। क्यों

कि जब मैं रसकूपिकामें पड़ा २ मर रहा था, उस समय इसी पवित्र पुरुषने मुझे महामंत्रका ध्यान करना सिखाया था। उसीकी कृपासे मुझे भी यह पद मिला है, इसलिये यह मेरा असाधारण उपकारी और आदि उपदेशदाता गुरु है। इसी लिये हमने पहले इसे नमस्कार किया है। बड़े लोगोंका कहना है कि जिसने एक अक्षर अथवा एक पद भी सिखाया है वह भी परम उपकारी है। उसके भी उपकारको जो लोग भूल जाते हैं वे पापी हैं। फिर यह तो पवित्र धर्मका उपदेष्टा है। इसका तो जितना सम्मान किया जाय उतना थोड़ा है। दोनों देव अपनी २ कथा सुनाकर चारुदत्तसे बोले—पुण्यपुरुष! हम आपके दास हैं। हमारे लिये कुछ आज्ञा कीजिये, जिसे पालन कर हम अपने जीवनको कृतार्थ करें। यह सुन चारुदत्तने कहा कि—मैं आप सरीखोंको तकलीफ देना अनुचित समझता हूं। परन्तु हां, इतनी प्रार्थना अवश्य करता हूं कि यदि मुझे अपने मित्रोंसे आप मिला दें, तो बड़ी कृपा हो। सुनकर उसी समय वे देव चले गये और उन्होंने थोड़ी ही देरमें चारुदत्तके मित्रोंको लाकर उसके पास उपस्थित कर दिये। वे सब भी चारुदत्तके वियोगसे दुःखी हो रहे थे, सो अनायास चारुदत्तको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुये। अन्तमें देवोंने फिर प्रार्थनाकी कि—महाभाग! अब आप धनके कमानेकी तकलीफ न उठावें। आपको जितने धनकी जरूरत है चलिये, चम्पामें आपको उतना ही धन मिल जायगा। यह देख सिंहग्रीवने देवोंको रोक

दिया और कह दिया कि अब आप अपने स्थानपर जावें इनकी फिकर न करें। इनके लिये सब तरहका आनन्द है। किसी तरह इन्हें तकलीफ न होगी। सुनकर देव तो अपने स्थानपर चले गये। इधर सिंहग्रीव और वराहग्रीव मुनिराजकी वन्दना कर चारुदत्तादिको बड़े महोत्सवके साथ अपने शहरमें लिवा लाये। वहां उन सभीका उचित आदर सत्कार किया गया। ये लोग भी सुखसे फिर वहीं रहने लगे। चारुदत्तने इसी अवसरमें बहुतसी विद्याएँ भी सिद्ध कर लीं। चारुदत्तकी इधर बहुत कुछ प्रसिद्धि हो गई। अच्छे २ राजा महाराजाओंने चारुदत्तके साथ अपनी २ कन्याओंका विवाह कर दिया। चारुदत्त अपनी बत्तीस स्त्रियोंसे सुख भोगने लगा।

एक दिन अवसर पाकर सिंहग्रीवने चारुदत्तसे कहा— महाभाग! एक प्रार्थना की जाती है उसे आप पूरी करें तो बड़ी कृपा हो। प्रार्थना यह है कि मेरे एक परम सुन्दरी कन्या है। वह वीणा बजानेमें दूसरी सरस्वती है। उसने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि जो मुझे वीणाके बजानेमें पराजित कर देगा, मैं उसीके साथ अपना विवाह करूंगी। सो आजतक किसीने उसे जीत नहीं पाई, इसलिये वह अभी अविवाहिता है। मैंने एक अच्छे विद्वान् ज्योतिषीसे पूछा था कि इसका विवाह किसके साथ होगा? ज्योतिषीने उत्तरमें कहा था कि—चारुदत्तके शहरमें वीणा बजानेमें सुचतुर पुरुष उत्पन्न होगा। वही इसका स्वामी होगा। इसलिये हे पूज्य! इसे आप अपने साथ ले

जाइये और इसकी प्रतिज्ञाके अनुसार जो इसे बीणा वजानेमें जीत ले उसीके साथ इसे विवाह दीजिये। चारुदत्तने सिंहग्रीवकी प्रार्थना स्वीकार की। जब वह पुत्रीको साथ लेकर आने लगा तब उसके साथ बहुतसे विद्याधर उसे पहुंचानेको चम्पानगरी तक आये। महाराज विमलवाहनने जब यह सुना कि चारुदत्त आगया है उन्हें बहुत खुशी हुई। वे भी उसकी अगवानी करनेको उसके सामने आये। चारुदत्त महाराजका अपने लिवानेको आना सुनकर बहुत आनन्दित हुआ और स्वयं भी महाराजके सामने जाकर और अच्छी २ वस्तु उनको भेटकर बड़े ही विनयके साथ उनसे मिला। चारुदत्तकी भेटसे महाराज बहुत खुश हुये और उसे सुयोग्य समझकर उनने अपना आधा राज्य चारुदत्तको देदिया।

महाराजसे मिले बाद चारुदत्त अपनी दुःखिनी माता और स्त्रीसे मिलनेको घरपर गया। माता अपने बिछुरे पुत्रको पाकर बहुत सन्तुष्ट हुई। उसने पुत्रको गले लगाया और शुभाशीर्वाद दिया। अपने प्यारे प्राणनाथको पाकर उसकी स्त्रीको जो खुशी हुई वह लेखनीसे नहीं लिखी जा सकती। इसका अनुभव उन्हीं पाठक और पाठिकाओंको हो सकता हैं जिन्हें वियोगके बाद सुख सम्मिलनका सुख मिला है।

वसन्तसेनाकी माताने चारुदत्तको पाखानेमें डाल दिया था और वह वहांसे चलदिया था। यह हाल जब वसन्तसेनाको मालूम हुआ तभीसे उसने भी यह प्रतिज्ञा

कर ली थी कि मेरे इस जन्मका स्वामी चारुदत्त ही है। उसे छोड़कर मैं कभी दूसरेकी ओर विकार दृष्टि न डालूंगी। सो वह भी चारुदत्तका आना सुनकर वहुत सन्तुष्ट हुई और जितना धन चारुदत्तने उसे दिया था वह सव लेकर चारुदत्तके यहां आगई। चारुदत्तका सव काम पहलेकी तरह चलने लगा।

चारुदत्तके साथ जो विद्याधर सिंहग्रीवादिक पहुंचानेको आये थे सव अपना २ कर्तव्य पूराकर अपने २ घरकी ओर रवाना हुये। चारुदत्त सुखपूर्वक रहने लगा।

कुछ दिन वीतनेपर चारुदत्तने सिंहग्रीवकी कन्याका विवाह वसुदेवके साथ कर दिया। वसुदेवने कन्याको वीणा वजानेमें हरा दी थी। कन्याका नाम गन्धर्वसेना था।

चारुदत्तकी पट्टरानी होनेका सौभाग्य उसके मामाकी पुत्रीको मिला। इसके नीचे वसन्तसेनाकी गणना होने लगी। इनके सिवाय और जितनी स्त्रियां थी उनके भाग्यके अनुसार वे भी चारुदत्तके द्वारा सम्मानित होती थीं। इस प्रकार वहुत काल पर्यन्त चारुदत्तने अपनी सभी स्त्रियोंके साथ विषय सुख भोगा और बहुत कुशलतासे प्रजा पालन किया। एक दिन वह महलोंपर चढ़कर प्रकृतिकी शोभाका निरीक्षण कर रहा था कि इतनेमें उसे एक वड़ा भारी वादलका टुकड़ा छिन्नभिन्न होते दीख पड़ा। देखते ही उसे संसारकी लीला भी इसीतरहकी जँची। वह उसी वक्त सवसे उदासीन होगया और अपने वड़े पुत्रको राज्यभार देकर वहुतसे राजाओंके साथ २ उसने पवित्र जिनदीक्षा

ग्रहण कर ली। पश्चात् वह कठिनसे कठिन तपश्चरण कर सर्वार्थसिद्धिमें जाकर देव हुआ।

भाईयो! विचारो, चारुदत्तकी एक वक्त क्या हालत थी और उसका घर कैसा था। परन्तु जबसे वह वेश्याके जालमें बिद्ध हुआ तबसे उसकी कैसी दशा होगई थी, उसे याद करो। चारुदत्तने असह्य दुःख भोगे। उसे पाखानेमें गिरना पड़ा। मैं नहीं जानता कि इससे भी बढ़कर कोई दुःख होगा। यह वेश्या, धनीसे प्रेम करती है। वह भी केवल दिखौवा। वास्तविक प्रेम तो वह स्वप्नमें भी किसीसे नहीं करती है। बुद्धिमानो! इस प्राण-घातिनीके सङ्गका परित्याग कर दो। यह विषकी वेल है। अपवित्रताकी भूमि है। धर्म और धनादिकी नाश करनेवाली हैं। सुयश-लताका मूलोच्छेदन कर डालनेवाली है। जैसे कुत्ता हड्डीके टुकड़ेको चबाता है और उसीकी नोकोंसे उसके मुँहमें खून निकलने लगता है। यद्यपि वह खून है उसीका, परन्तु वह भ्रमसे हड्डीके टुकड़ेमेंसे खूनको निकला हुआ समझकर उस टुकड़ेको वड़ी रुचिके साथ खाने लगता है। ठीक यही हालत वेश्याओंके सेवन करनेवालोंकी है।

जो लोग मद्य, मांसके नहीं खानेवाले हैं उन्हें तो, इन पापिनी वेश्याओंका सङ्ग भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि इनकी सङ्गतिमें नियम व्रत और सत्यता आदि उत्तम गुण सुरक्षित नहीं रहने पाते।

वेश्याओंके सेवनसे धर्म और सुखादिकका मूलसे नाश

होजाता है। इस लिये बुद्धिमानो! वेश्याओंके सेवनका परित्याग करो। जो धर्मात्मा पुरुष इस पाप व्यसनका परित्याग कर जिनभगवानके द्वारा उपदेशित और दया-मयी जिनधर्मको धारण करते हैं वे संसारमें सबके सत्कारपात्र होकर चन्द्रमाकी तरह उज्ज्वल सुयशके भोग-नेवाले होते हैं।

इति चतुर्थः परिच्छेद. ।

धनकारन पापनि प्रीति करै, नहिं तोरत नेह जथा तिनकौं।
लवे चाखत नीचनके मुँहकी, शुचिता कब जाय छियैं जिनकौं॥
मद मांस बजारनि खाय सदा, अँधले विसनी न करैं घिनकौं।
गनिका सँग जे सठ लीन भये, धिक है धिक है धिक है तिनकौं॥

[जिनशतक]

---

१ यदि धन नहीं होता है तो स्नेहको तिनकेके समान तोड़ देती है २ लार-लाला।

पांचवीं शिकार-व्यसनकथा।

श्रेणिकने गणधरसे पूछा-कि स्वामी ! शिकारके खेलनेसे किसने दुःख उठाये हैं? उसकी कथा सुनाईये। भगवानने यों कहना आरंभ किया-

श्रेणिक ! शिकार खेलनेसे दुःख तो बहुतोंको भोगने पड़े हैं परन्तु उन सबमें ब्रह्मदत्त अधिक प्रसिद्ध हुआ है। उसीकी कथा तुम्हें सुनाई जाती है। ध्यान देकर सुनना। इस कथाके द्वारा भी बहुतोंका भला हो सकेगा।

अवन्ती देशके अन्तर्गत एक उज्जयिनी नगरी है। उसके राजाका नाम था ब्रह्मदत्त। ब्रह्मदत्तको शिकारके खेलनेकी जितनी अधिक रुचि थी उससे भी कहीं अधिक उसे धर्मके पालनमें अरुचि थी। जब वह शिकार करनेको जाता और उसे शिकार मिल जाती तो बड़ा खुश होता और यदि शिकार न मिलती तो उतना ही दुखी होता। इसी प्रकार राज्य पालन करते २ उसे बहुत दिन बीत गये। एक दिनकी बात है कि जब वह शिकार करनेको गया तो उसे किसी वनमें एक मुनिके दर्शन होगये। मुनि एक पत्थरकी शिलापर ध्यानमें निमग्न बैठे हुये थे। मुनिके प्रभावसे उसदिन ब्रह्मदत्तको शिकार न मिली। वह अपने घरपर लौट गया। दूसरे और तीसरे दिन भी वह शिकार करनेको गया परन्तु फिर भी उसे

शिकार न मिली। यह देख ब्रह्मदत्त मुनिराजपर बड़ा क्रोधित हुआ। उसने बदला लेनेके लिये दारुण कर्म करना आरंभ किया। वह यह कि- एक दिनकी बात है कि मुनिराज तो शहरमें आहार करनेको गये और इधर ब्रह्मदत्तने आकर मुनिराजके ध्यान करनेकी शिलाको अग्निकी तरह गर्म करवा दी। मुनिराज भोजन करके वापिस आये और ध्यान करनेको उसी शिलापर बैठ गये। बैठते ही उनका शरीर जलने लगा, असह्य वेदना होने लगी। परन्तु तब भी मुनिराज उसपरसे न उठे और घोर-तर उपद्रव सहते रहे। अन्तमें अपनी ध्यानरूप अग्निसे कर्मोंका नाशकर और अन्तःकृत केवली होकर वे अवि-नश्वर धाममें जा बसे। देवोंने आकर उनके इस अलौकिक धैर्यकी प्रशंसा की और उनका यशोगान करते हुये वे अपने स्थानपर चले गये।

इधर सात दिन भी न बीतने पाये थे कि इस घोर पाप कर्मके उदयसे ब्रह्मदत्तके सारे शरीरमें कोढ़ निकल आया। उसे उसकी इतनी अधिक पीड़ा होती थी कि कहीं एक जगह बैठना तक उसके लिये कठिन हो गया था। जब उसने देखा कि अब इस रोगकी निवृत्ति होना सहज नहीं दीखता, तब दुःखी होकर अपने शरीरको अग्निमें डाल दिया। इस आर्तध्यानसे मरकर ब्रह्मदत्त सप्तम नरकमें गया। सच है नरकके सिवाय पापियोंको कहीं स्थान नहीं मिलता है। नरकमें उसने तेतीस सागर पर्यन्त छेदन, भेदन, यंत्रोंके द्वारा पिलना और अग्निमें जलना आदि कठिनसे

कठिन दुःख भोगे। वहांसे निकलकर सर्प, व्याघ्र, कुक्कुट, कुत्ता, अजगर और गधे आदि बुरेसे बुरे जीवोंकी पर्यायें उसने धारण कीं और क्रम २ से अन्य सब नरकोंमें भी वह गया। बहुतसे दुःख सहे, जिनका उल्लेख करना भी असंभव है।

अबकी बार कुछ पापका बोझा हलका हो जानेसे उसने हस्तिनापुरमें किसी धीवरके यहां कन्याकी पर्याय धारण की। जब कन्या पैदा हुई तब उसका सारा शरीर दुर्गंधके मारे नाकों दम किये देता था। यह देख उसके माता पिताने उसे किसी जङ्गलमें डाल दी। दैवकी लीला विचित्र है, जो वह अनाथिनी होकर भी किसी तरह पल-कर धीरे २ बढ़ने लगी। लोग अब भी उससे बड़ी घृणा करते थे। वह बेचारी जब कुछ बड़ी हो गई, तब उसने अपने पेट भरनेके लिये एक छोटीसी नाव बनवा ली और नदीके किनारे पर ही एक झोपड़ी बांधकर वह उसीमें रहने लगी। जो लोग नदीके पार उतरते, उन्हें नावमें बैठाकर वह पारकर देती और जो वे देते उसीके द्वारा अपना पेट भरती थी।

एक दिन वह अपनी झोपड़ीमें बैठी हुई थी कि इतनेमें उसके सामनेसे एक आर्यिकाओंका संघ निकला। संघको देखकर न मालूम उसके दिलमें क्या बात उत्पन्न हो गई जिससे वह घरसे निकल कर वहींपर पहुंच गई जहां संघ जाकर ठहरा हुआ था। संघकी प्रधान आर्यिकाको उसने नमस्कार किया। उस आर्यिकाका नाम था कल्या-

णमाला। उसने कन्याकी बुरी हालत देखकर पूछा-तू इतनी दुखी क्यों है? उत्तरमें कन्याने कहा-माता! मैं कर्मोंकी मारी मरी जाती हूं। तुम मुझे अब वह उपाय दया करके बताओ कि जिससे मैं दुःखोंसे छूट सकूं। मुझे तुम जो उपाय बताओगी मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगी। उसके कहे अनुसार आर्यिकाने उसे अणुव्रतोंके ग्रहण करनेको कहा। कन्याने भी उसी वक्त उन्हें ग्रहण करलिये और बाद आर्यिकाके ही साथ वह चल दी। आर्यिका वहांसे चल कर राजगृह नगर जानेको रवाना हुई। चलते २ रात होजानेसे आर्यिका तो अपने संघको लेकर किसी पर्वतकी गुहामें चली गई। परन्तु भाग्यसे बेचारी कन्याको पर्वतके बाहर ही रहना पड़ा। कन्या सोती हुई थी कि एकाएक एक सिंहने आकर उसे खा डाली। कन्या अच्छे परिणामोंसे मरकर राजगृह में एक सेठकी पुत्री हुई। सेठका नाम कुवेरदत्त था। भाग्यसे वह कन्या हुई तो बड़ी सुन्दरी, परन्तु रही पहलेकी तरह दुर्गन्धा ही। इसीसे कोई उसके साथ विवाह नहीं करना चाहता था। बेचारे सेठको इस बातका बड़ा ही दुःख था परन्तु कुछ कर नहीं सकता था। सच है, बुद्धिमानोंको कन्याके होनेसे दुःख ही उठाने पड़ते हैं।

एक दिन उधर ही श्रुतसागर मुनि आ निकले। सब शहरके लोग उनकी वन्दना करनेको गये। कुवेरदत्त भी अपनी कन्याको साथ लेकर मुनिराजके पास गया और उनकी वन्दना कर वहींपर बैठ गया। समय पाकर उसने मुनिसे

प्रार्थना की कि—स्वामी ! यह कन्या सुन्दरी होनेपर भी दुर्गन्धा क्यों है ? आप कृपा कर कहो। मुनिराज बोले, यह जीव जैसे कर्म करता है उसके अनुसार उसे दुःख भी उठाने पड़ते हैं ? इस कन्याके जीवने पहले जन्ममें एक मुनिको जला दिया था उसीका यह फल है जो इस जन्ममें भी इसे दारुण दुःख भोगना पड़ा है। इसने उस पापसे कितने दुःख भोगे हैं उनका उल्लेख करना कठिन है। कन्या अपने जन्मका हाल सुनकर वहुत दुःखी हुई और रोकर मुनिसे वोली कि—नाथ, हाय ! कहां तो मेरा राजकुलमें जन्म और कहां अव यह अपवित्र स्त्रीपर्याय ? स्वामी ! मुझे नरकोंमें जो दुःख भोगने पड़े हैं वे सव आज मेरी आखोंके सामने नृत्यकर रहे हैं। यह आपकी कृपा है जो मुझे जातिस्मरण हो आया। उससे मुझे यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि पापका फल कैसा भयानक होता है ? अव मुझे आप कुछ व्रत धारण करवाइये जिससे आगामी दुःख न उठाने पड़ें और उत्तम गतिकी प्राप्ति हो। उसके कहे अनुसार मुनिने उसे षट्रसत्यागव्रत का उपदेश दिया और कहा कि–इस व्रतके द्वारा स्त्रीलिङ्ग नष्ट होकर स्वर्गमें देव पदवी मिलती है और फिर धीरे २ मोक्ष प्राप्त हो जाती है। कन्या वोली कि–नाथ ! यदि ऐसा है तो मुझे इस व्रतका स्वरूप भी समझा दीजिये। मुनिराज कहने लगे कि पुत्रि ! आरम्भमें तो एक महीनेतक प्रतिदिन एक २ रस छोड़ना चाहिये और एक ही स्थानपर वैठकर अपनी शक्तिके माफिक एक वक्त अथवा दो वक्त भोजन करना चाहिये।

इसी प्रकार छह महीने तक करनेसे यह व्रत पूर्ण होता है। जब व्रत पूर्ण होजाय, तब जिनमन्दिर बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करवानी चाहिये। अथवा गुरुकी आज्ञाके अनुसार विद्यादान आदि किसी धर्म कार्यमें धन खर्च करना उचित है। अन्तमें मण्डल मण्डवाकर शान्तिविधान और अभिषेक आदि करवाना चाहिये और इसी समय छहों रसोंका विशेषपने त्याग करना उचित है। भाग्यानुसार जैसा कुछ भोजन मिले उसे ही सन्तोष पूर्वक कर लेना चाहिये। भोजनके पहले एक बात और याद रहनी चाहिये वह यह कि—जब भोजन करने लगे, तब उसके पहले भोजनके अष्टांशसे देव, गुरु और शास्त्रकी पूजन करके गुरुओंकी आज्ञा ले ले तब भोजन करे। पुत्रि! इस व्रतके करनेसे कुछ तकलीफ ज़रूर होती है परन्तु वह इसके भावी फलका विचार करनेपर कुछ भी नहीं जान पड़ती। इसलिये सश्रद्धा इस व्रतको स्वीकार कर। संसारके दुःखोंसे डरनेवाले पुरुषोंको तो यह व्रत सर्वथा ग्रहण करना चाहिये। मुनिराजके कहे अनुसार कन्या व्रतको धारणकर घरपर गई और उसका यथाविधि पालन करने लगी। जब व्रत पूरा हुआ, तब उसका उद्यापन भी खूब धन लगाकर किया। वह आयुके अन्तमें मरकर स्वर्गमें देव हुई। वहां उसने बहुत काल पर्यन्त उत्तम २ सुख भोगे और पश्चात् वह स्वर्गसे चयकर पटनाके महाराजा शक्तिसिंहके वज्रसेन नामका पुत्र हुआ। बड़े होनेपर महाराजने अपना राज्यका सब भार उसीके आधीन कर दिया और आप जिनदीक्षा लेकर

तपस्वी होगये। उनके बाद कुछ दिनों तक तो वज्रसेननें भी पुत्र पौत्रादिके साथ राज्य सुख भोगा किन्तु अन्तमें वह भी संसारसे उदासीन होगया और जिनदीक्षा लेकर तपश्चर्या करने लगा और फिर कुछ ही दिनोंमें ध्यानके वलसे कर्मोंका नाशकर मोक्षमें जा वसा।

श्रेणिक, देखा न? जिसकी एक वक्त शिकारके खेलनेसे बड़ी बुरी दशा हुई थी वही ब्रह्मदत्त व्रतके प्रभावसे अब मोक्षका सुख भोग रहा है। जो सर्व साधारणके लिये बड़ा है—दुःसाध्य है। बुद्धिमानो! इस जीवसंहारी कर्मको छोड़ो। इस निर्दय व्यसन के द्वारा जो नरकादि कुगतिमें दुःख उठाने पड़ते हैं उनकी तो हम चर्चा ही छोड़ देते हैं। परन्तु प्रत्यक्षमें भी यदि आप देखेंगे तो आपको जान पड़ैगा कि—शिकार खेलनेवालोंका हृदय बड़ा ही कठोर और निर्दय होता है, उनकी आखोंसे सदा क्रोधकी चिनगारियें छूटा करती हैं, बुद्धि उनकी बड़ी क्रूर होती है और हरवक्त उनके हृदयमें पाप वासनायें जाग्रत रहती हैं। वहुतसे लोग शिकार खेलनेको बड़ी वीरताका काम बताते हैं परन्तु यह उनकी केवल स्वार्थान्धता है। भला! जिसमें विचारे निरपराध जीवोंका सर्वनाश संहार किया जाता है वह वीरताका काम कैसे कहा जा सकता है?

सभी यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि एक जरासे कांटेके लगजानेसे अत्यन्त दुःख होता है। परन्तु खेद है कि, वे पापी लोग फिर भी इस भयानक कर्मके करनेसे बाज नहीं आते। भाईयो! यदि अपना और दूसरोंका

भला चाहते हो? यदि कुछ भी तुममें दया है और इस पवित्र मानव जीवनको निर्दोष और शान्ति सुखका स्थान बनाना चाहते हो तो हृदयसे क्रूर वृत्तिको निकालकर बाहर फेंक दो इसीमें हित है।

श्रीवीरभगवानका शान्त और परम दयामय धर्म तुम्हारे हितका उपदेशक है, जिसके धारण करनेकी जी जानसे कोशिश करो। यही परम सुखका साधन है।

इति पञ्चम. परिच्छेदः।

काननमैं बसै ऐसौ आन न गरीब जीव,
प्राननसौं प्यारौ प्रान पूंजी जिस यहै है।
कायर सुभाव धरै काहूसौं न द्रोह करै,
सबहीसौं डरै दांत लिये तृन रहै है॥
काहूसौं न रोष पुनि काहूपै न पोष चहै,
काहूके परोष परदोष नाहिं कहै है।
नेकु स्वाद सारिवेकौं ऐसे मृग मारिवेकौं,
हा हा रे कठोर तेरो कैसैं कर बहै है॥

[जिनशतक.]

छट्ठी चौर्य-व्यसनकथा।

श्री गौतमगणधरको नमस्कार कर श्रेणिकने नम्रतासे पूछा कि— स्वामी! चोरी करनेमें किसने दुःख भोगे हैं? उसकी कथा कहिये—

गणधरने कहा— श्रेणिक! तुमने यह प्रश्न वहुत अच्छा किया। चोरीके करनेसे दुःख तो वहुतोंको उठाने पड़े हैं परन्तु सवमें अधिक प्रसिद्ध शिवभूति हुआ है। इसलिये उसीकी कथा तुम्हें कही जाती है। इस कथामें यह वात खुलासा वतलाई जायगी कि, शिवभूतिने किस तरह तो चोरी की और उसे इससे किस तरहका दुःख उठाना पड़ा है। तुम ध्यानसे इस उपाख्यानको सुनो। क्योंकि कथाओंका सुनना भी धर्म प्राप्तिका कारण है।

भारतवर्षके अन्तर्गत वनारस शहर है। उसके राजाका नाम है जयसिंह। जयसिंहकी गुणवती राणीका नाम था जयवती। राजाके यहां एक पुरोहित रहता था। उसका नाम शिवभूति था। शिवभूति वड़ा सत्यवादी था। प्रायः इससे उसकी प्रसिद्धि हो गई थी। वह वेदशास्त्रका भी वहुत अच्छा विद्वान् था। उसके यज्ञोपवीतमें हर समय एक छुरी वंधी रहती थी। वह इसलिये कि—"मैं कभी झूठ नहीं वोलूंगा। यदि कभी मेरे मुंहसे झूठ निकल जावेगी तो उसी समय मैं अपनी जीभको इसी छुरीसे काट डालूंगा।" इस प्रतिज्ञाके कारण लोग उसे सत्य-

घोष भी कहा करते थे। राजा इसे सत्यवादी समझकर इसका बहुत सम्मान करता था। इसी विश्वासके कारण लोग इसके यहां अपना अमानत धन रख जाया करते थे।

एक दिन पद्मपुरका सेठ धनपाल बनारस आया। उसने वहांके लोगोंसे पूछा कि मुझे अपना धन अमानत रखना है उसे किसके यहां रक्खूं? जिससे मुझे फिर दुःख न उठाना पड़े। लोगोंने कहा—तू बड़ा विवेकरहित है। क्या आकाशसे तो नहीं गिरा है, जो महाराजके पुरोहितको नहीं जानता? वह बड़ा ही सत्यवादी है। उसके यहां धन रखनेसे तुझे कोई हानि न उठानी पड़ेगी। धनपाल लोगोंके कहे माफिक सत्यघोषके पास गया और पुरोहितजीसे विनयकर उनके सामने आप बैठ गया। पुरोहित महाराजने भी सेठका उचित आदर कर उससे पूछा—आप किस लिये यहां आये हैं? कुछ सेवा हो तो कहिये? उसे करनेको मैं सर्वथा तैयार हूं। उत्तरमें सेठने कहा—महाराज! मुझे कहीं दूसरे देश जाना है। मैं अपना सब धन साथ ले जाना उचित नहीं समझता। क्योंकि नहीं मालूम क्षणभरमें क्या होजाय और फिर मुझे दुःखमें दिन काटना पड़ें। इसलिये मैं आपकी सेवा में आया हूं। मेरे पास चार रत्न हैं। उनकी कीमत पांच करोड़की है। सो इन्हें वस्त्रमें बांधकर आपको सौंपे देता हूं। आप सावधानीसे इनकी रक्षा करें। यदि दैवयोगसे कदाचित मुझे धनहानि उठानी पड़े तो फिर मैं इनके द्वारा अपनी जीवनयात्रा अच्छी तरह निर्वाह कर सकूंगा।

महाराज ! ध्यान रहै—मेरी आगेकी जीवनलीला इन्हींपर निर्भर है। उत्तरमें पुरोहितजी बोले—सेठ साहब! अपने रत्नोंको आप ही संदूकमें रख दीजिये। क्योंकि जितने महाशय मेरे यहां अपना धन रखनेको आते हैं, वे सब अपने ही हाथोंसे सन्दूकमें रख जाते हैं। और जब पीछे लेनेको आते हैं, तब अपने ही हाथोंसे निकाल लेजाते हैं। धनपाल पुरोहितजीके कहे माफिक उनकी सन्दूकमें अपने रत्नोंको रखकर आप व्यापारके लिये रवाना होगया।

धनपाल बारह वर्ष तक बाहर रहा और वहां उसने व्यापार करके बहुत धन कमाया। जब वह जहाजके द्वारा अपने देशकी ओर लौट रहा था, तब रास्तेमें दैव दुर्विपाकसे उसका जहाज टक्कर खाकर टुकड़े २ हो गया। धनपालका धन तो जहाजके साथ ही समुद्रमें डूब गया, परन्तु उसे एक लकड़ेका टुकड़ा हाथ लग गया। उसके सहारे वह बेचारा कठिनाइयोंको उठाता हुआ मुश्किलसे समुद्रके किनारे पहुंचकर अपने शहरमें आगया। जिन-मन्दिरमें जाकर उसने भगवानके दर्शन किये और दो दिन तक वहीं ठहरकर वह तीसरे दिन पुरोहित महाराजके पास पहुंचा।

पुरोहितजी महाराजने उसे आता हुआ देखकर एक चाल चली, वह यह कि आप झटसे नाकके आगे हाथ रखकर अपने पास बैठे हुये लोगोंसे बोल उठे कि शकुनके द्वारा जान पड़ता है कि आज कोई भारी कलङ्क मुझे लगेगा। बेचारे भोले लोगोंने उनके हृदयके पापको न

जानकर कहा—महाराज! आप बड़े सत्यवादी हैं। भला आपको कैसे कलंक लग सकता है? लोग यह कह ही रहे थे कि—इतनेमें फटे कपड़े पहने हुये धनपाल वहीं आ उपस्थित हुआ और दूरहीसे नमस्कार कर पुरोहितजीके सन्मुख बैठ गया। जब पुरोहितजी महाराजने उस बेचारे दुःखके मारे हुयेकी ओर दृष्टि तक न डाली, तब तो उसे स्वयं पुरोहितजीसे बोलना पड़ा। महाराज! मैं आपसे कहकर समुद्रयात्रा करनेको गया था। परन्तु दैवदुर्विपाक-से जहाज नष्ट हो गया और मेरी यह दुर्दशा हुई है। इसलिये मुझे आपके पास आना पड़ा है। आप मेरी अमानत वस्तु दे दीजिये। कुछ सुनेकी तरह पुरोहितजीने कहा—समुद्रमें जहाजके डूबनेसे यह दशा हुई? अस्तु दैवकी गति विचित्र है। मालूम होता है, तुझे कुछ जरूरत है। अच्छा ठहर, कुछ दान दिलवाये देता हूं। जिससे तू फिर अपना प्रबन्ध कर लेना। पुरोहितका कहना सुनते ही सेठ महाशयका रहा सहा धैर्य भी जाता रहा। बड़ी ही मुश्किलसे वह बोला कि पुरोहितजी! यह आप क्या कहते हैं? मुझे आपके दानकी जरूरत नहीं हैं। आप तो मेरे रक्खे हुये रत्नोंको ही दे डालिये। आपकी कृपाका मैं बड़ा ही आभारी होउंगा। क्योंकि इस वक्त मैं बड़ी भारी आपत्तिसे बचकर आया हूं। रत्नोंका नाम सुनते ही पुरोहितजीके कपट क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। वे लाल २ आंखें करके बोले—देखो! यह कैसा झूठ बोल रहा है। मैंने अभी ही तुम लोगोंसे कहा था कि आजका दिन मेरे लिये

अच्छा नहीं है। वही हुआ। लोगोंने भी हांमें हां मिलाकर कह दिया कि महाराज! वेचारेका सव धन नष्ट हो गया है, इसीसे यह विक्षिप्त सा दीख पड़ता है। क्योंकि धनके नष्ट होजानेसे वुद्धि ठिकानेपर नहीं रहती। नीतिकारोंने यह वहुत ठीक कहा है कि, जिसका धन नष्ट हो जाता है, उसके सभी गुण नष्ट हो जाते हैं।

वेचारे धनपालको सभीने विक्षिप्त कहकर घरके वाहिर निकलवा दिया, यह देख उससे सभी घृणा करने लगे। शहरके लोगोंने उसे विक्षिप्त कह कर उसकी अवहेलना की। धनपाल राजाके पास दौड़ा गया और उसने अपनी कथा राजासे कह सुनाई। परन्तु उसका भी कुछ फल न निकला। सव उसे ही विक्षिप्त वताने लगे। वेचारा धनपाल वड़ी चिन्तामें पड़ा। एक तो उसका सव धन नष्ट हो गया और दूसरे उसे ही सव बुरा कहने लगे। यह अपने निर्वाहका कुछ उपाय न देखकर जिनमन्दिरमें ही रहने लगा। जो श्रावक इसे भोजनके लिये लिवा ले जाते, उन्हींके यहां यह भोजन कर आया करता था और मन्दिरमें रहा करता था। किसीने इसके कहनेका विश्वास न किया किन्तु उल्टा इसे ही सव लोग दोषी वताने लगे। अन्तमें जव इसे अपने छुटकारेका कोई उपाय न दीख पड़ा, तव इसे एक युक्ति सूझी। वह यह कि—जव आधी रात होती, तव यह जिनमन्दिरसे निकलकर राजाके महलके पीछे जाता और वहां एक वृक्षके ऊपर चढ़कर वड़े जोरसे चिल्लाता कि—"महाराज!

आप धर्म और अधर्मके विचार करने वाले हैं। आपको मेरी प्रार्थनापर ध्यान देना चाहिये। कारण जो लोग दुर्बल होते हैं, उन्हें अपने महाराजका ही भरोसा रहता है। महाराज! आप दयालु हैं। आपको दीन दुःखियोंपर कृपा करनी चाहिये। जरा मेरी भी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये—महाराज! जब मैं समुद्रयात्रा करनेको गया था, तब आपके लोभी पुरोहितके पास पांच करोड़की लागतके चार रत्न अमानत रख गया था। उन्हें अब पुरोहित जी देते नहीं हैं। आप मेरे रत्न मुझे दिलवा दीजिये।" इसीतरह प्रतिदिन वह चिल्लाने लगा। ऐसा करना उसका प्रतिदिनका नियमसा हो गया। ऐसा करते २ उसे बहुत दिन बीत गये।

एक दिनकी बात है कि—अवसर पाकर जयसिंहकी रानी जयवतीने अपने स्वामीसे कहा कि—प्राणनाथ! देखो, विचारा यह दरिद्री रोज इसीतरह चिल्लाया करता है। आपको कुछ तो इसके विषयकी जांच करनी चाहिये। महाराजने यह कह कर कि यह विक्षिप्त होगया है, रानीके कहनेपर कुछ ध्यान नहीं दिया। महारानी फिर बोली—आप नाहक इसे विक्षिप्त कहते हैं। नहीं जाना जाता कि, इसमें विक्षिप्त होनेकी क्या बात है? मुझे तो यह गल्ती आपहीकी दीख पड़ती है, जो इसके न्यायकी ओर आपका लक्ष्य ही नहीं जाता। उत्तरमें महाराज बोले, यही सही। यदि तुम इसे निर्दोष समझती हो, तो इसके विचारका भार भी मैं तुम्हें ही सौंपे देता हूं। तुम इसका

ठीक २ निर्णय करो कि, वास्तवमें अपराधी कौन है ? महाराजकी यह वात महारानीने स्वीकार की और इस विषयकी परीक्षाका भार अपने ऊपर लेकर वह महाराजसे वोली कि—एक वात आपको करनी होगी, वह यह कि अभी आपको कहीं जाना न चाहिये। महारानीके कहे अनुसार महाराज वहांसे न जाकर अन्तःपुरहीमें ठहरे रहे। महारानीने महाराजसे जूआ खेलना आरंभ किया। इतनेमें वहींपर पुरोहित जी महाराज भी पहुंच गये और आशीर्वाद देकर तिथिपत्रका पाठ करने लगे। जव अपना पाठ पूरा कर चुके, तव महारानीने उनसे कहा—आइये महाराज ! आज तो आप भी हमारे साथ खेलिये। सुनकर पुरोहितजी वोले—महारानीजी भला यह कैसे हो सकेगा। मैं क्षुद्रपुरुप आपके साथ कैसे खेल सकता हूं ? महारानी वोली—वाह ! आपने यह अच्छा कारण वतलाया। क्या पिता पुत्रीके साथ नहीं खेल सकता? महाराजने भी महारानीके वचनोंका समर्थन कर कह दिया कि पुरोहितजी खेलिये, इसमें क्या दोप है ? महाराजके आग्रहसे विचारे पुरोहितजीको खेलना ही पड़ा। खेलते २ महारानीने अपनी चतुरतासे पुरोहितजीके द्वारा गतदिनके भोजनका सव हाल जान लिया। वेचारे पुरोहितजीको इतनी अकल कहां जो रानीके आशयको समझ जाँय। इसीसे उन्होंने घरकी सव वातें रानीसे कह दी। इसके वाद जयवतीने ये सव वातें नेत्रके इशारेसे अपनी दासीको समझाकर उसे पुरोहितजीके मकानपर भेजी।

दासीने पुरोहितके घरपर जाकर वे सब बातें उनकी स्त्रीसे कह सुनाई और उन रत्नोंको उससे मांगे, जो पुरोहितजीने धनपालके रख लिये थे। वह बिगड़कर बोली कि—चली जा यहांसे, मेरे पास कोई रत्न नहीं है। दासीने जाकर यह हाल आपनी स्वामिनीसे कह दिया।

जयवतीने अपनी युक्तिका उपयोग न निकला देखकर दूसरी युक्ति निकाली। वह पुरोहितजीसे बोली कि—महाराज, अबसे ऐसा कीजिये कि—यदि आप मुझे खेलमें हरा देंगे, तब तो मैं अपनी अंगूठी आपको दे दूंगी और यदि आप हार जावेंगे, तो आपको अपनी अंगूठी दे देनी होगी। पुरोहितजीने लोभमें आकर यह स्वीकार कर लिया और अब वे वास्तविक हार जीतके साथ खेलने लगे। पहली ही बार पुरोहितजीसे महारानीने अंगूठी जीत ली और उसे गुप्त रीतिसे अपनी दासीके हाथ देकर पुरोहितजीके घरपर भेजी। दासीने जाकर वह अंगूठी पुरोहितजीकी स्त्रीको दिखाई और कहा कि—अब तो तुम्हें मेरा विश्वास हुआ कि, मुझे पुरोहितजीने ही भेजी है। जल्दीसे रत्न दे दो। रत्नोंको तुम्हारे स्वामीने मंगाये हैं। फिर भी ब्राह्मणीने दासीको रत्न न दिये। दासीने आकर रत्नके न देनेका हाल अपनी स्वामिनीसे कह दिया।

अबकी बार जयवतीने पुरोहितजीके गलेका हार जीत लिया और उसे दासीको देकर फिर ब्राह्मणीके पास भेजी। दासीने जाकर कहा कि—देख, पुरोहितजीने यह हारकी निशानी देकर मुझसे कहलवाया है कि, मैं बड़े

संकटमें फँस गया हूं। यदि मुझेजीता देखना चाहती हो तो, हारके देखते ही रत्नोंको दे देना। ब्राह्मणी थी तो स्त्री ही न? वह क्या जानती थी कि असली बात क्या है। अस्तु, घरमें जाकर रत्नोंको ले आई और उन्हें उसने हार लाने वालीके हाथ दे दिये। दासीने जल्दीसे जाकर रत्नोंको महारानीके हाथमें दे दिये। महारानीने रत्नोंको लेकर खेलना तो बन्द किया और जो पुरोहितजीकी अंगूठी और हार जीता था, वह वापिस पुरोहितजीको देकर उनसे कहा—बस, महाराज! अब समय अधिक होगया है। खेलना बन्द कीजिये। महारानीके कहते ही खेल बन्द हुआ। इसके बाद महारानीने उन रत्नोंको गुप्त रीतिसे अपने स्वामीको दे दिये और आप वहां से बिदा हुई।

महारानीके चले जानेपर पुरोहितजीसे महाराजने पूछा—पुरोहितजी! हां, यह तो कहिये कि, चोरी करनेवालेको शास्त्रोंमें क्या दण्ड देना लिखा है? सुनते ही सत्यघोष महाराज बोल उठे कि—महाराज! या तो उसे शूलीपर चढ़ाना चाहिये अथवा अच्छे तीखे शस्त्रसे उसके टुकड़े २ करवा देना चाहिये। ऐसा न करनेपर इस पापका भागी राजाको होना पड़ता है। महाराजने फिर कहा—यदि चोर इस योग्य न हो तो, उसका क्या किया जाय? पुरोहितजी बड़ी वेपरवाहीके साथ कहने लगे कि—महाराज! चोर कैसा ही क्यों न हो, उसे नियमसे उपर्युक्त दण्ड देना उचित है। इसपर महाराजने अधिक न कहकर वे चारों रत्न पुरोहितजीके साम्हने रख दिये और कहा कि—पापी!

द्विजकुलकलंक ! ! कह तो सही, अब इस पापका तुझे क्या दण्ड देना चाहिये ? तूने बेचारे भोले पुरुषोंको इसी तरह धोखा दे देकर ठगे हैं। नहीं तो इतना धन तेरेपास कहांसे इकट्ठा होजाता ? मैंने तेरी दुष्टताका अभीतक पता न पाया था। सच है, जो लोग छिपकर बुरा काम करते हैं, वे सहसा दूसरोंको अपना हाल जानने नहीं देते हैं। महारानी बड़ी बुद्धिमती और विदुषी है, जो उसने आज तेरा सब पाप प्रगटकर दिया। नहीं तो, न मालूम अभी और कितने पुरुष तेरी शिकार बनते। अब यह जल्दी कह दे कि इस पापका क्या प्रायश्चित्त तुझे दिया जावे ? पुरोहितजी रत्नोंको देखते ही चित्रामके लिखेसे हो गये। उनका मुख कान्तिहीन हो गया। सच है, जब छिपे पाप प्रगट होते हैं, तब जीवोंकी यही हालत हुआ करती है।

महाराज बोले—पुरोहितजी, आपको शूलीका सुख तो अभी दिलवा देता, परन्तु आपने ब्राह्मण कुलमें जन्म लिया है, इसीलिये इस कठोर दण्डसे आपकी रक्षा की जाती है और यह कहा जाता है कि मेरे यहां चार मल्ल हैं। सो या तो उन प्रत्येकके हाथकी चार २ मुक्कियोंकी मार सहो, अथवा तुम्हारे साम्हने एक गोबरकी थाल रक्खी जाती है, उसे तुम खा जाओ। यदि यह भी तुम्हें मंजूर न हो, तो अपना सब धन मेरे सुपुर्द करो और तुम यहांसे कहीं निकल जाओ।

अपने लिये दण्डकी योजना सुनकर पुरोहितजीने कहा—महाराज, मैंने अपना धन बड़े क्लेशसे कमाया है, उसे मैं नहीं

दे सकता। हां गोवरकी थाल रखिये, उसे खाऊंगा। पुरोहितजीके कहे माफिक गोवर मंगाकर उनके साम्हने रक्खा गया, परन्तु जव उसका वे एक ग्रास भी न खा सके तव फिर वोले—महाराज! यह नहीं खाया जा सकता। आप अपने मल्लोंको बुलवाइये, मैं उनकी मुक्कियां सहूंगा। मल्ल बुलवाये गये और उन्हें पुरोहितजीको चार २ घूंसे लगानेकी आज्ञा दी गई। मल्लोंने निडर होकर पुरोहितजीको घूंसे लगाने आरंभ किये। घूंसोंकी मार पूरी भी न होने पाई थी कि, वीचहीमें पुरोहितजीके प्राण निकल गये। पापका उचित प्रायश्चित्त उन्हें मिल गया। इसके वाद महाराजने पुरोहितका जितना धन था, वह भी सव जप्त कर लिया और उनकी स्त्रीको भी देशसे निकाल वाहिर की। पुरोहितजीने आर्त्तध्यानसे मरकर महाराजके खजानेपर ही सर्पकी पर्याय धारण की।

इसके वाद महाराजने धनपालको वुलवाया। वह वुलवाते ही राजसभामें उपस्थित हुआ और नमस्कारकर महाराजके साम्हने वैठ गया। महाराजने उन चारों रत्नोंको वहुतसे रत्नोंमें मिलाकर धनपालसे कहा कि—क्या तुम अपने रत्नोंको पहचानते हो? और यदि पहचानते हो, तो इन रत्नोंमेंसे अपने रत्नोंको निकाल लो। महाराजके कहते ही धनपालने उन सव रत्नोंमेंसे अपने रत्नोंको पहचानकर निकाल लिये और वे महाराजको दिखला दिये। यह देख महाराजने धनपालकी वुद्धिकी वहुत प्रशंसा की और कहा कि, तुम अपने रत्नोंको ले लो। ये

रत्न तुम्हारे ही हैं। लोग जो यह कहा करते हैं कि, समुद्रमें रत्न होते हैं वे भूलते हैं। क्योंकि वास्तवमें रत्न तो पुरुष हैं। जो रत्न समुद्रमें होते हैं, वे रत्न नहीं किन्तु पत्थर हैं। उनसे उतना लाभ नहीं हो सकता, जितना लाभ पुरुषरत्नकी बुद्धिसे होता है। इस तरह धनपालकी बहुत कुछ प्रशंसा कर महाराजने उसे और भी अपनी ओरसे पांच गांव जागीरीमें देकर बहुत खुशीके साथ उसके घरपर पहुंचा दिया।

एक दिनकी बात है कि, महाराज अपना खजाना देखनेको गये हुए थे। महाराज वहां पहुंचे ही थे कि इतनेमें पुरोहितके जीवने जो खजानेपर सर्प हुआ था दौड़कर महाराजके पांवमें काट खाया। सर्पके काटते ही शोर-मच गया। सब मंत्र जाननेवाले बुलवाये गये। उन्होंने अपनी मंत्रशक्तिसे बहुतसे सर्पोंको बुलवाये और कहा कि जो सर्प महाराजका अपराधी है, वह तो यहीं ठहरे बाकीके सब सर्प चले जावें। मंत्रवादियोंके कहे माफिक गन्धमादन सर्प जिसने कि महाराजको काटा था ठहरा और सब चले गये। फिर मंत्रवादियोंने उस सर्पसे कहा—नागराज, तुम्हें उचित है कि या तो महाराजका पीछा छोड़ दो और यदि यह स्वीकार न हो, तो इस जलते हुये अग्निकुण्डमें कूद पड़ो। सुनकर सर्पको बड़ा क्रोध आया। वह अपने शरीरकी भी कुछ भी पर्वा न कर झटसे अग्निमें जा गिरा और देखते २ भस्म हो गया। उसके मरते ही महाराजने भी अपनी जीवनलीला संवरण की।

भाइयो ! देखो, पूर्वजन्मकी शत्रुता भी कितनी भयानक होती है। इसी शत्रुतासे सर्पने महाराजको काटा था। इसलिये पूर्ण ध्यान रक्खो कि, कभी किसीके साथ वैर विरोध न होने पावे। सर्प मरकर नरक गया और महाराज पशुगतिमें गये। आपने चोरीका उपाख्यान सुना। चोरी कितनी बुरी आदत है। देखो, चोरीहीसे सत्यघोपकी यह हालत हुई। चोरीसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। इसी चोरीसे वहुतसे नरक गये, वहुतसे तिर्यंच हुये, वहुतोंको शूलीपर चढ़ना पड़ा, वहुतोंका सिर काटा गया, वहुतोंके नाक, कान, हाथ, पांव, आदि काटे गये, वहुतोंका धन नष्ट हुआ, वहुतोंकी कीर्त्तिमें कलंक लगा। कहांतक वतलाया जावे, संसारमें जितने कठिनसे कठिन दुःख हैं, वे सव चोरी करनेवालोंको सहने पड़ते हैं।

विना दिये किसीकी वस्तुके लेनेको चोरी कहते हैं। परन्तु इससे भी अधिक वह पाप है, जो अपने यहां रक्खे हुये दूसरेके धनको हजम कर जानेमें हो है। इन बुरे कर्मोंसे वहुतोंने दारुण दुःख भोगे हैं। इसलिये जो दुःखोंसे बचना चाहते हैं, उन्हें बुरे कर्म छोड़ देने चाहिये।

चोरीकरनेसे पापका वन्ध होता है। सव गुण नष्ट हो जाते हैं। धनका नाश हो जाता है। शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसके सिवाय दोनों लोकोंमें निन्दाका पात्र होना पड़ता है। इसलिये हे बुद्धिमानो ! इस पापकर्मका परित्याग करो और पवित्र जिनधर्म स्वीकार करो। यही आत्माको पूर्ण शांतिका देनेवाला

है और संसारके दुःखोंका नाश करनेवाला है। जिसका देव तक जब यशोगान करते हैं, तब वह कितना उत्तम होगा, यह सहज ही ध्यानमें आ सकता है।

इति षष्ठः परिच्छेदः।

छप्पय।

चिंता तजै न चोर, रहत चौंकायत सारै।
पीटै धनी विलोक, लोक निर्दइ मिलि मारै॥
प्रजापाल करि कोप, तोपसौं रोप उड़ावै।
मरै महा दुख पेखि, अंत नीची गति पावै॥
अति विपति मूल चोरी विसन, प्रगट त्रास आवै नजर।
परवित अदत्त अंगार गिन, नीति निपुन परसैं न कर॥

[जैनशतक]

सातवीं परस्त्री–व्यसन कथा ।

गौतम स्वामीको नमस्कार कर उनसे श्रेणिकने प्रश्न किया कि–स्वामी, परस्त्रीसेवनके द्वारा दुःख उठानेवालेकी कथा सुनाइये। उत्तरमें भगवानने यों सुनाना आरंभ किया कि—

जिसतरह और २ व्यसनोंके सेवनसे बहुतोंने दुःख उठाये हैं, उसीतरह परस्त्रीके द्वारा भी बहुतोंने घोरतर दुःख सहे हैं। परन्तु ऋषिलोग अपने २ ग्रन्थोंमें रावणका अधिक उल्लेख करते हैं इसीलिये हम भी तुम्हें उसीका उपाख्यान सुनावेंगे। लंकाधिपति रावणने केवल सीताके हर ले जानेसे ही जब अपने पवित्र कुलको कलंकितकर दुःख उठाये, तब जो परस्त्रीका सेवन करते हैं वे यदि नरक जावें और घोरतर दुःख सहें, तो आश्चर्य क्या है? सुनो–

राक्षसद्वीपके अन्तर्गत लंका नामकी राक्षसोंके रहनेकी नगरी है। वह सुन्दरतामें स्वर्गसे किसी अंशमें कम नहीं है। यही रावण उसका राजा था। रावणका जन्म राक्षस नामक वंशमें हुआ था। जिसप्रकार इन्द्र अपनी राजधानीका सुनीतिसे राज्य करता है, उसीतरह रावण भी लंकाका राज्य नीतिपूर्वक करता था। रावणके दो भाई और थे। उनके नाम थे कुंभकर्ण और विभीषण। और इन्द्रजीत तथा मेघनाद आदि बहुतसे उसके पुत्र थे। रावणकी

स्त्रियां बहुतसी थीं परन्तु उन सबमें प्रधान महारानीका सौभाग्य मन्दोदरीको मिला था। रावणकी राज्यनीतिसे उसकी सब प्रजा प्रसन्न थीं। इसीसे कोई उसका शत्रु न था। ठीक भी है, जिसने इन्द्र, वरुण, यम और वैश्रवण आदि बड़े २ राजाओंके अभिमानका नाशकर उन्हें अपने आधीन कर लिये थे, फिर पृथ्वीमें कौन ऐसा पराक्रमी राजा रहा होगा, जो इसके शासनका अपमान कर सके।

रावण तीन खण्डका राजा था, इसीसे उसके यहां चक्ररत्न भी प्रगट होगया था जो सब सुखोंका कारण समझा जाता है। रावण बड़ा ही प्रतापी और पुण्यशाली था। उसकी प्रसिद्धि सारी पृथ्वीमें हो रही थी। उसका सब राजे महाराजे बड़ा आदर करते थे।

रावणका बहनोई खरदूषण था। इसकी राजधानी अलंकारपुर थी। अपनी भुजाओंके बलसे यह भी संसारमें प्रसिद्ध हो रहा था। यह भी रावणकी तरह तीन खण्ड राज्यका स्वामी था। राक्षसवंशी तथा वानरवंशी आदि सभी इसकी आज्ञा मानते थे और इसे अपना स्वामी कहते थे।

एकदिन कैलास पर्वतपर श्रीबालमुनिको केवलज्ञान हुआ जानकर उनकी पूजनकरनेको देव विद्याधर आदि सभी वहां आये। इसी समय रावण भी वहां पहुंचा और भगवानको नमस्कारकर बैठ गया। सभीने भगवानका उपदेश सुनकर अपनी २ शक्तिके अनुसार व्रत नियमादि

ग्रहण किये। परन्तु रावण वैसा ही चुप चाप बैठा रहा। उसे चुप चाप बैठा हुआ देखकर बालमुनिराजने उससे कहा—तुम भी कुछ व्रत नियमादि ग्रहण करो, जिससे आत्माको शान्ति मिले। रावण बोला—हे भगवान, कहिये मैं क्या व्रत ग्रहण करूं? उत्तरमें भगवानने कहा—तुम जानते हो कि, जो आचार विचारसे रहित होता है, व्रत नियमोंको जो धारण नहीं करता है उसे बुरी गतियोंमें दुःख सहने पड़ते हैं। इसलिये आत्महितके चाहनेवालोंको कमसे कम एक व्रत तो जरूर ही स्वीकार करना चाहिये। रावणको अपनी सुन्दरतापर बड़ा अभिमान था, इससे उसने उस समय घमण्डमें आकर कहा कि—स्वामी, दया करके मुझे भी किसी एक व्रतसे पवित्र करो। मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि जो स्त्री मुझे न चाहेगी उससे मैं कभी बलात्कार नहीं करूंगा। सुनकर भगवान बोले—जैसी तुम्हारी इच्छा। परन्तु देखना, कहीं इसके पालन करनेमें भी शिथिल न हो जाना।

रावण व्रत धारणकर अपने घर चला गया और फिर सुखपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा। रावणके समयमें दूसरा कोई प्रतापी राजा न था जो इसके सुखमें बाधा पहुंचा सके। रावण तीन खण्डका एकछत्र राज्य करता था। उसने जिन शक्तियोंकेद्वारा अपने राज्यको इस योग्यतापर पहुंचा दिया था, उसकी कथा और २ ग्रन्थोंमें विस्तृत वर्णन की गई है। उसके अखण्ड प्रतापने उसकी प्रसिद्धि सारे संसारमें कर दी थी। यह सुन श्रेणिकने

गौतम स्वामीसे पूछा—भगवान्, आपकी कृपासे रावणके प्रताप और विस्तृत राज्यका तो हाल जान लिया, परन्तु इसमें कुछ और विशेष पूछना है। वह यह कि—रावणने जो दूसरेकी स्त्री हरी थी यह कैसे ? और किसलिये हरी थी ? उसकी ऐसी बुरी वासना क्यों हुई ? और यह स्त्री कौन थी ? सुनकर गौतम स्वामीने कहा—रावणने जिस स्त्रीको हरी थी, वह रामचन्द्रकी पत्नी थी। उसका नाम था सीता। वह सुन्दरतामें उससमय सारे संसारकी स्त्रियोंमें सुप्रसिद्ध थी। रावण एक दिन युद्ध करनेको वनमें आया हुआ था। वहींपर इसे वैठी हुई देखकर उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गया। और फिर छलसे इसके पतिका वियोग कराकर इसे आप जवरन उठा लेगया। उसी पाप-के फलसे आज भी वह नरकमें घोर दुःख भोग रहा है।

यह सुनकर श्रेणिकका और भी कौतुक वढ़ा। उसने पूछा—स्वामी, मुझे इसी कथाके अन्तर्गत कुछ और पूछना है। इस अविनयकी आप क्षमा करें। रामचन्द्र वनमें क्यों आये थे ? और उन्होंने अपनी पत्नीको अकेली वन में क्यों छोड़ी ? स्वामीने कहा—श्रेणिक, तुम्हारी अधिक २ उत्कण्ठा देखकर आनन्द होता है। तुम निर्भय होकर पूछो। उसके सुनानेमें मुझे किसीतरहकी रुकावट नहीं है। सुनो, रामचन्द्र वनमें क्यों आये ? इसकी कथा वहुत वड़ी है। तुम्हें उसका संक्षिप्त वर्णन सुनाया जाता है।

कौशलदेशके अन्तर्गत अयोध्या नामकी एक नगरी है। इसके राजा थे दशरथ। इनकी चार स्त्रियां थीं।

उनके नाम कौशल्या, सुमित्रा, केकयी और पराजिता थे। इनमें कौशल्याके रामचन्द्र, सुमित्राके लक्ष्मण, केकयीके भरत और पराजिताके शत्रुघ्न हुये। अपने सुशील पुत्रोंके साथ दशरथ सुखपूर्वक प्रजापालन करते थे। बड़े २ राजे महाराजे दशरथकी आज्ञाके आधीन थे।

एक दिनकी बात है कि, दशरथ सभामें बैठकर दर्पणमें अपने मुखमंडलकी शोभाका निरीक्षण कर रहे थे कि, उन्हें कानोंके पास एक सफेद बाल दीख पड़ा। उसे देखते ही क्षणमात्रमें उनके हृदयमें वैराग्यका उदय हो आया। वे विचारने लगे कि--कालके घरका दूत अब आ पहुंचा है, इसलिये इन विषयोंसे इन्द्रियोंको खींचकर अपने वश करूं। विषयोंका सेवन करते २ बहुत दिन बीत गये। अब भी यदि इनसे उपेक्षा न की जायगी, तो नियमसे कुगतियोंके घोर दुःख सहने पड़ेंगे। क्योंकि यह राज्य केवल संसार-का बढ़ानेवाला है। इस अन्तिम अवस्थामें उचित है कि, इस राज्यभारको रामचन्द्रके सुपुर्द करके मैं जिन-दीक्षा स्वीकार करूं। क्योंकि संसारके दुःखोंके नाश करनेमें यही समर्थ है। यह विचारकर दशरथने अपने कुटुम्बके सब लोगोंको बुलवाये और उनके साम्हने राम-चन्द्रको राज्यभार देना चाहा। जब यह हाल केकयीको मालूम हुआ, तो वह उसीसमय उनके पास आई और रोकर उनसे बोली कि--नाथ, मुझ दासीको यहीं अकेली छोड़कर आप कहां जाते हैं? मैं भी आपहीके साथ २ चलूंगी। जब आप ही नहीं हैं, तब मुझे पुत्र और राज्यसे

ही क्या मतलब? कुलस्त्रियोंको अपने प्राणनाथके साथ वनमें भी क्यों न रहना पड़े, उनके लिये वही सुखस्थल है। वही राज्य महल है। दशरथ बोले-प्रिये, तुम मेरे साथ वनमें चलकर क्या करोगी? तुम यहीं रहो और पुत्रको सुखी देखकर आनन्दसे दिन विताओ। यह सुन भरत बोल उठा कि—पिताजी, मुझे घरसे कुछ प्रयोजन नहीं है। मैं तो आपके साथ ही जिनदीक्षा स्वीकार करूंगा। अपने पुत्रका भी दीक्षा लेना सुनकर केकयी दशरथसे बोली कि-प्राणनाथ, क्या आपको याद है कि, स्वयंवरके समय आपने मुझे एक वचन दिया था? यदि आपको स्मरण हो, तो उसे पूरा करके मेरी आशाको पूरी कीजिये। उत्तरमें दशरथने कहा—प्रिये, यह न समझो कि मैं अपने वचनको भूल गया। मुझे वह अच्छीतरह याद है। तुम्हें जो चाहिये उसे मांगो, मैं अवश्य ही तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा। क्योंकि नीतिकारोंका कहना है कि, जो अपने वचनोंको पूरा नहीं करते, वे मनुष्य नहीं हैं। इसलिये मैं अपना वचन जरूर ही पूरा करूंगा। तुम वास्तवमें मेरी शुभ कामना पूरी करनेवाली हो। यह तुम्हारी ही कृपाका फल है जो मैं युद्धमें जीता वचा था। इसलिये अव मुझे भी उचित है, कि, मैं भी तुम्हारी इच्छा पूरी करूं। क्योंकि सव कर्जोंमें वचनका कर्ज ही वड़ा भारी है। यह सुन केकयी फिर बोली—स्वामी, अव मुझे आपके वरकी चाह नहीं है। मैं तो आप ही के साथ २ वनवासिनी बनूंगी। दशरथ बोले—प्रिये,

मैं तुम्हारी इच्छाका बाधक नहीं होता । जैसा तुम्हें अच्छा मालूम दे वही करो । परन्तु बात यह है कि, मैं इससमय राजा हूं तुम अपना वर मांग लो, उसे मैं पूरा कर सकता हूं । केकयी नीचा मुख कर दशरथसे बोली कि–नाथ, यदि आपका आग्रह है तो अस्तु, मुझे स्वीकार है । परन्तु बात यह है कि इधर तो आप चले और साथ ही पुत्र भी दीक्षा लेना चाहता है । ऐसी दशामें पति और पुत्र रहित होकर मैं अभागिनी अकेली ही रहकर क्या करूंगी ? इसलिये यदि आप उचित समझते हैं, तो अपना राज्य भरतको और रामचन्द्रको वनवास दीजिये । केकयीकी यह बुरी वासना सुनकर दशरथने विचारा कि, यदि इस समय भरतको राज्य नहीं देता हूं, तो मेरे वचनोंमें कलंक लगता है और भरतको राज्य दे भी दिया जाय तो कुछ हानि नहीं, परन्तु मुझसे यह कैसे कहा जा सकेगा कि रामचन्द्र, तुम अब वनवास सेवन करो, यह राज्य भरतको दिया जायगा। ये दोनों ही बातें विरुद्ध हैं । अब मुझे क्या कर्त्तव्य है ? बेचारे दशरथको इस कठिन प्रश्नने किंकर्त्तव्यमूढ़ बना दिया । उनसे कुछ भी कहना न बना । वे बड़े दुखी हुये । इतनेमें वहीं रामचन्द्र आगये । उन्होंने पिताजीके मुखको निष्प्रतिभ देखकर मंत्रियोंसे पूछा कि–आज पिताजी चिन्तितसे क्यों दीख पड़ते हैं ? उत्तरमें मंत्रियोंने कहा कि–शायद तुम्हें स्मरण होगा कि स्वयंवरके वक्त महाराजने केकयीको वर दिया था । सो आज उनका दीक्षा लेना सुनकर महारानीने अपना वर महाराजसे मांगा है । वे

कहती हैं कि, यह राज्य भरतके लिये दिया जाकर रामचन्द्र-को वनवास दिया जाय। अब इसमें कर्त्तव्य क्या है? इसीकी चिन्तासे महाराज दुखी हो रहे हैं। इनका हृदय चिन्ताके समुद्रमें डूब रहा है। सुनकर रामचन्द्रने बड़ी ही धीरताके साथ यह कहा—क्या यही छोटी सी चिन्ता महाराजके दुःखकी कारण है? यह तो कुछ भी बात नहीं है। इसके लिये इतनी चिन्ता करना उचित नहीं है। मेरी समझमें तो यही उचित जान पड़ता है कि, पिताजीको अपने वचन पूरे करनेकेलिये माता केकयीके कहे अनुसार भरतको राज्य देना चाहिये और मेरे लिये जो माताकी आज्ञा हुई है, उसका मैं पालन करनेको तयार हूं। क्या आप यह नहीं जानते कि—संसारमें वे ही पुत्र कहलाने योग्य हैं, जो पिताके पूर्णभक्त हों, और जिन्हें अपने पिताके वचनोंका सदा खयाल रहता हो। वे पुत्र नहीं हैं, जो अपने पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करते हैं। जो हो, मैं तो प्राणपणसे पिताजीके वचनोंके पूरे होनेकी कोशिश करूंगा। इतना कहकर रामचन्द्रने उसी समय भरतके ललाटमें राज्यतिलक कर दिया, और स्वयं पिताजीके चरणोंको नमस्कार कर लक्ष्मणको अपने साथ ले वहांसे चल दिये। पुत्रकी यह अश्रुतपूर्व धीरता दशरथ न देख सके। उन्हें पुत्रके रवाना होते ही मूर्च्छा आ गई।

रामचन्द्र वहांसे चलकर अपनी माताके पास पहुँचे और नमस्कार कर उसके साम्हने बैठ गये। बाद

उन्होंने मातासे प्रार्थना की कि–माता, पिताजीके वचनों-का पालन करनेकेलिये हम विदेश जाते हैं । जब हम अपनी कहीं सुव्यवस्था कर लेंगे, तब तुम्हें भी लिवा ले जावेंगे । इसलिये तुम किसीतरहका दुःख न करना । इसप्रकार माताको समझा बुझाकर वे दोनों भाई घरसे बाहिर हो पतिप्राणा सीताको साथ लिये हुये जंगलकी ओर रवाना हुये । यह देख बहुतसे प्रजाके लोग भी रामचन्द्रके साथ हो गये । ठीक है, अपने युवरा-जका अगाध प्रेम उन्हें यों अकर्मण्य कैसे बैठने देता ? रामचन्द्रने उन्हें बहुत रोका, परन्तु सुने कौन ? सब उनके पीछे २ ही चले जाते थे । कुछ दूर चलकर इन्हें एक अन्धकारमय अटवी मिली । वहीं एक बड़ी भारी और गहरी नदी बह रही थी। रामचन्द्र और लक्ष्मण तो सीताको लेकर जल्दी नदीके पार हो गये, परन्तु और लोगोंके लिये यह असंभव होगया । अगत्या उन्हें उदास होकर वापिस घरकी ओर लौट आना पड़ा । इसे छोड़-कर वे कर ही क्या सकते थे ? जब भरतने सब लोगोंके साथ रामचन्द्रको न आये हुये देखे, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ । वे उसी वक्त माताके पास जाकर बोले कि–माता, बिना रामचन्द्रके मैं किसीतरह राज्यपालन नहीं कर सकता । सो या तो उन्हें वापिस लानेका उपाय करो, नहीं तो मैं भी जाकर दीक्षा ग्रहण करता हूं । आगे जैसा उचित समझो, वैसा करो । मुझे जो कहना था, वह कह चुका । पुत्रके आश्चर्य भरे वचन सुनकर उसे बहुत कुछ

चिन्ता हुई। वह उसीवक्त उठी और पुत्र तथा और भी कितने अच्छे २ पुरुषोंको साथ लेकर रामचन्द्रके पास जा पहुँची। रामचन्द्र अपनी माताका आना सुनकर कुछ दूरतक उसके साम्हने गये और उसके चरणोंको नमस्कार किया। भरत रामचन्द्रको देखते ही उनके पावोंमें गिर पड़े और गद्गद होकर बोले कि-महाराज, मुझ दासपर दया कीजिये। क्या आप इन स्त्रियोंके चरितसे अपरिचित हैं? इन्हींके द्वारा गाढ़से गाढ़ प्रेम क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है। यह जाति बड़ी विषैली है। मुझे बड़ा आश्चर्य है कि आप क्यों इनके मायाजालमें फँस गये? क्या केवल माताके वचनोंको मानकर आपको यह करना उचित है? नहीं। स्वामी, मुझपर कृपा कीजिये। आप चलकर अपना राज्य सम्हालिये। यह राज्यशासन आपहीको शोभा देगा। आप सिंहासनको अलंकृत कीजिये। लक्ष्मण आपके मंत्रित्वका काम करेंगे। मैं आपके ऊपर छत्र लगाऊंगा और शत्रुघ्न चँवर डुलावेगा। नाथ, यदि अब भी आप कृपा करके अयोध्याकी ओर गमन न करेंगे, तो निश्चय समझिये कि, मैं भी वहां नहीं ठहरूंगा। आपके विना राज्यसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। उत्तरमें रामचन्द्रने कहा- भाई, तुम यह न समझो कि मैंने मातासे द्वेष करके वनमें जाना विचारा है। किन्तु मुझे तो पिताजीके वचनोंका पालन करना है। मैं प्राणपणसे उनके वचन पूरे करूंगा। इसलिये पीछा किसीतरह नहीं लौट

सकता। तुम जाओ और वारह वर्षपर्यन्त प्रजापालन करो। तवतक मैं इधर नहीं आनेका। भरत यह सुनकर वड़े खेदित हुये। उन्होंने रामचन्द्रसे चलनेके लिये वहुत कुछ आग्रह करना आरंभ किया। यह देख रामचन्द्रसे न रहा गया। उन्होंने अन्तमें कुछ कठोरता लिये कहा कि–भरत, पिताजीने तुम्हें वारह वर्षतक राज्यशासन करनेकी आज्ञा दी है, इसका मुझे वहुत आनन्द है। इसके सिवाय मैं अपनी ओरसे और भी दो वर्षकेलिये तुम्हें राज्य देता हूं। चौदह वर्ष पूर्ण होते ही मैं इधर आ जाऊंगा। इसके पहिले आनेकी मैं प्रतिज्ञा करता हूं। यदि तुम मेरे पीछे आनेकी इच्छा रखते हो, तो अपने आग्रहको छोड़ दो और जाकर राज्यपालन करो। अन्यथा इसका परिणाम अच्छा न होगा। यह देखकर मंत्रियोंने भरतको समझाया कि, अधिक आग्रह करनेमें कुछ लाभ नहीं दीख पड़ता। वस, आप अव चुप साध जाइये। नहीं तो ऐसा न हो कि कुछका कुछ हो जाय। यद्यपि रामचन्द्रके अन्तिम उत्तरसे भरतको वहुत दुःख पहुंचा, परन्तु निरुपाय हो उन्हें उनका कहना मानना पड़ा। इसके वाद भरत रामचन्द्रको नमस्कार कर पीछे लौट आये। भरत राज्य तो करने लगे, परन्तु उनका चित्त सदा रामचन्द्रमें लगा रहता था। इससे वे सदा दुखीसे वने रहते थे।

भरतके चले जाने पर रामचन्द्र भी वहांसे रवाना होकर धीरे २ चित्रकूट पर्वतपर आ पहुंचे। यहां कुछ

विश्राम करके मालवदेशकी ओर रवाना हुये और रास्तेमें उन्होंने धर्मात्मा वज्रजंघकी शत्रुसे रक्षा की। इन्होंने और भी बहुतसे अच्छे २ काम किये, जिनसे इनकी वहुत प्रसिद्धि हो गई। वहांसे भी रवाना होकर ये आगे चले। रास्तेमें वनमाला आदि बहुतसी राजपुत्रियोंके साथ लक्ष्मणका विवाह हो गया। कुछ दिनतक बरावर चलकर ये दोनों भाई वंशगिरि नामक पर्वतपर आये। यहांपर श्रीदेश-भूषण और कुलभूषण मुनिराज विराज रहे थे। उन्हें ध्यानमें बैठे हुये देखकर उनका कोई पूर्वजन्मका शत्रु उनपर घोरतर उपद्रव कर रहा था, सो इन्होंने अपने बलसे मुनिका उपद्रव दूर किया। ये दोनों भाई कुछ समयतक तो वहां ठहरे, इसके बाद वहांसे भी चलकर दण्डकवनमें आये। वन बड़ा भयावह हो रहा था। एक वक्त तो उसके भीतर घुसनेकी कालकी भी हिम्मत नहीं पड़ती थी। उसकी कुछ परवाह न कर ये दोनों भाई उसीके भीतर ठहरे।

कुछ दिन चढ़ चुका था। लक्ष्मण भोजनकी फिकरमें लगे। भोजनकी सामग्री इकट्ठी की गई। सीताने थोड़ी ही देरमें भोजन तयार कर अपने स्वामीसे कहा—प्राणनाथ! अब आप पूजन कीजिये, दिन अधिक चढ़ा जाता है। उसके कहे अनुसार रामचन्द्र जिनभगवानकी पूजन कर अतिथिसंविभागके लिये सुपात्रकी प्रतीक्षा करने लगे। भाइयो! पुण्य सब जगह साथ ही बना रहता है। ठीक, इसी नीतिके अनुसार

रामचन्द्रके पुण्यके प्रेरे हुये एक महीनेके उपवासे एक मुनिराज वहीं आ उपस्थित हुये। रामचन्द्रने मुनिराजके पवित्र दर्शन कर अपने नेत्रोंको पवित्र किये और वाद तीन प्रदक्षिणा देकर कहा कि—स्वामी! ठहरिये! ठहरिये!! ठहरिये!!! इसप्रकार प्रार्थना कर प्रासुकजलसे उनके चरणकमल धोये और उस पवित्रजलको अपने मस्तकपर लगाया। उसी जगह एक वृक्षकी डालीपर जटायु नामका पक्षी वैठा हुआ था। उसने रामचन्द्रकी की हुई क्रियाको देखकर विचारा कि—हाय! धिक्कार है मेरे इस जीवनको जो मुझे पशुपर्याय मिली। अहा! ये दोनों भाई कितने पुण्यात्मा हैं, जो इन्हें ऐसे महात्माकी सेवा करनेका आज अवसर मिला है। और यह स्त्री भी वड़ी ही सौभाग्यवती है, जो मुनिराजकी परिचर्यामें इतनी भक्ति कर रही है। हाय! मैं वड़ा ही अभागा हूं, जो मुझे यह पशुगति मिली। यदि आज मैं भी इनकी तरह मनुष्य होता तो, क्या आज इस अपूर्व अवसरको जाने देता? मैं मारा गया। हे प्रभो! यदि कभी मुझे भी पुण्यप्रभावसे मानवपर्याय प्राप्त हो, तो मैं भी नियमसे ऐसे महात्माओंकी वड़ी भक्तिसे सेवा करूंगा। इसी प्रकारके पवित्र विचार उसके हृदयमें लहरें लेने लगे।

रामचन्द्र और सीताने नवधा भक्तिसे मुनिको आहार दिया। आहार हो चुकनेके वाद जव मुनि वहाँपर वैठे, तव रामचन्द्रने उन्हें नमस्कार कर पूछा—स्वामी, यह स्थान इस प्रकार सूनसान कैसे हो गया है? और क्यों

इसका नाम दण्डकवन पड़ा है? मुनि बोले—इस देशके राजाका नाम था दण्डक। वह बड़ा तेजस्वी था। उसकी सारी पृथ्वीमें प्रसिद्धि हो रही थी। किसीसमय उसके राज्यमें बहुतसे दिगम्बर मुनि आये। पापी दण्डकने उनके नग्नरूपको देखकर उनसे बड़ी घृणा की और इसी घृणाके कारण उसने उन सब मुनियोंको घानीमें पेल दिये, जैसे तिल पीले जाते हैं। सच है, पापियोंके हृदयमें दया नहीं होती।

उन मुनियोंमेंसे एक मुनि संघके बाहिर रह गये थे। जब वे मुनि शहरके भीतर घुसने लगे, तब उन्हें लोगोंने भीतर जानेसे रोक कर कहा कि—महाराज, यहांका राजा बड़ा ही दुष्ट और पापी है। उसने आपके साथी जितने मुनि थे, उन सबोंको घानीमें पिलवा दिये हैं। इस लिये आपसे प्रार्थना है कि, आप शहरके भीतर न जावें। क्योंकि उसकी क्रूरता तो आप जान ही गये हैं। संभव है, आपकी भी वह वही हालत करे। मुनि साधुओंपर किये गये अत्याचारकी बात सुनकर बड़े क्रोधित हुये। क्रोधके आवेशमें आकर उन्होंने कहा कि, जिस निर्दयी पापीने हमारे संघकी यह अवस्था की है, देखूं, अब वह भी कैसे जीवित रह सकता है? इतना कह-कर ही वे राजाकेपास गये और उससे बोले कि—पापी! दुराचारी! तूने ही तो हमारे साधुओंको मरवाये हैं? देखूं, अब तू अपना जीवन कैसे सुखपूर्वक बिताता है? इस विषम कोपके साथ ही उनके कन्धेसे एक पुरुषाकार

तेजस्विनी मूर्त्ति निकली और देखते २ उसने मनुष्योंको, पक्षियोंको, पशुओंको, राजाको और साथ ही उन मुनिको भी क्षणमात्रमें जलाकर भस्म कर दिये। राजाने जैसा कर्म किया था, उसका वैसा ही उसे प्रायश्चित्त भी मिल गया। वह वहांसे मरकर नरकमें गया। वहां उसने नाना प्रकारके छेदन, भेदनादि घोर दुःख भोगे। नरकस्थिति पूर्णकर वह राजाका जीव यह जटायु हुआ है। यह तो इस स्थानके सूनसान होनेका कारण है और इसके राजाका नाम दण्डक होनेसे इसका नाम दण्डकवन पड़ा है। यह सब मुनिके शापका फल है। सच है, जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसका उसे फल भी मिलता है।

मुनिके द्वारा अपना पूर्वजन्मका हाल सुनकर पक्षीको बड़ा दुःख हुआ। वह मूर्च्छित होकर धड़ामसे पृथिवीपर गिर पड़ा। उसे पृथिवीपर गिरा हुआ देखकर सीताको बहुत दया आई। उसने उठकर उसीसमय पक्षीके ऊपर ठण्डा जल छिड़का। उससे उसकी मूर्च्छा कुछ दूर हो गई। सचेत होते ही पक्षी मुनिके पास गया और उनके चरणोंमें नमस्कारकर अपनी मातृभाषामें बोला कि—हे नाथ, मुझ अनाथ पशुपर भी दया करो, जिससे मैं संसारके दुःख-रूपी समुद्रसे पार हो सकूं। मेरा चित्त संसारसे अब बहुत ही उदासीन हो रहा है। मुनिने जटायुकी दुःख दशापर विचार कर उसे सम्यक्त्व ग्रहण करनेका उपदेश दिया। जटायुने मुनिके कहे अनुसार पांच अणुव्रत स्वीकार किये और जीवोंकी हिंसा करना छोड़कर धर्मके सेव-

नमें अपना मन लगाया। सीता यह देखकर कि, उसने जीवोंकी हिंसा करना छोड़ दी, अब उसकी जीवन वृत्ति होना मुश्किल है, स्वयं उसका पालन पोषण करने लगी। इसके बाद मुनिराज भी उपदेश देकर इच्छानुसार विहार कर गये और रामचन्द्र वहीं निर्भयतापूर्वक ठहरे।

संध्याके समय लक्ष्मण यह देखनेके लिये कि, इस वनमें कहीं हिंस्र जीवोंका निवास तो नहीं है-निकले। वे निर्भयतासे आगे बढ़े चले जाते थे कि, इतनेमें कहींसे हवाके साथ २ सुगन्धि आई। लक्ष्मण भी जिधरसे सुगन्धि आती थी, उधर ही मुड़े। थोड़ी दूर जाकर उन्होंने देखा कि एक गहन वांसके बीहड़के ऊपर सुन्दर खड्ग लटक रहा है और उसके ऊपर चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओंका लेपन किया हुआ है। वह अनेक तरहके सुगन्धित फूलोंसे सजा हुआ है। उसका नाम चन्द्रहासखड्ग है। वह इन्द्रके हाथसे आया हुआ है। इतना कहकर गौतमभगवानने इसी कथासे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी कथा कहनी आरंभ की।

एक अलंकारपुर नामक शहर था। उसका राजा खरदूषण था। इसकी स्त्रीका नाम सूर्पनखा था। यह रावणकी बहिन थी। इनके शम्बूक नामका पुत्र था। वह बहुत सी विद्याका जाननेवाला था। यही शम्बूक इस दुर्गम वांसके वीहड़में चन्द्रहास खड्गके सिद्ध करनेको मंत्र साधन कर रहा था। परन्तु निर्बल पुरुषोंकेलिये मंत्रका सिद्ध करना जरा कठिन है। यद्यपि उसका हृदय निर्बल था, तौ भी

उसने वारह वर्ष तक एक दिन उपवास और एक दिन कोदु तथा जल लेकर पूर्ण किये। क्योंकि गुरुने इसके सिद्ध होनेकी अवधि वारह वर्षकी वतलाई थी। गुरुने मंत्रसाधनका उपदेश देते वक्त उसे इतना और समझा दिया था कि जब खड्ग उतर आवे, तव भी तुम उसे सात दिन- और भी हाथमें नहीं लेना। आठवें दिन पहले ही जिन भगवानकी पूजा करना और फिर खड्गको नमस्कार-कर हाथमें लेना। शम्बूक गुरुसे मंत्र सीखकर उसे सिद्ध करनेको वनमें गया. और वहां एकान्त स्थानमें वैठकर मंत्र सिद्ध करने लगा। सो खड्गको आये हुये अभी पूरे सात ही दिन वीतने पाये थे कि, आज ही लक्ष्मण इधर आ निकले। खड्गको वांसके वीहड़ पर लटका हुआ देखकर उन्होंने उसे कौतुकसे हाथमें लेलिया और चलाना चाहा। उन्हें न तो यही मालूम था कि इस वीहड़में कोई ध्यान लगाये हुये वैठा है और न खड्गकी शक्तिका परिचय था। सो खड्गके चलाते ही निमिषमात्रमें वह सारा वांसका वीहड़ और उसके साथ शम्बूक भी कटकर गिर पड़ा-इसके वाद वह खड्ग लक्ष्मणके हाथमें वापिस आ गया। खड्ग लेकर लक्ष्मण वहांसे चल दिये और कहीं और वनमें जाकर ठहर गये। कुछ देरके वाद ही आहारकेलिये सामग्री लेकर शम्बूककी माता सूर्पनखा भी आ पहुंची और वह वनको विलकुल साफ देखकर विचारने लगी कि-जाना जाता है, पुत्रने खड्गके सिद्ध होनेकी परीक्षा की है। जीवोंका नाश कर आज उसने क्रूरता धारण की है। पुत्रको मंत्रसिद्धि हुई

समझकर वह बहुत खुश हुई। परन्तु जब वह नीचे उतरी और पुत्रके मस्तकको धड़से जुदा देखा, तब उसे बड़ा दुःख हुआ, परन्तु फिर भी भ्रमसे वह यह समझ कर कि, शायद पुत्रने यह अपने मंत्रकी माया फैलाई है, जल्दीसे पुत्रके पास आकर कहने लगी कि— पुत्र! उठो! उठो!! क्या तुम्हें मुझहीसे मायाचार करना उचित है? तूने विद्याके सिद्धकरनेमें बहुत दिन विताये हैं, अब तो उठकर मेरे गलेसे लगजा। मङ्गलमय दिनमें इसप्रकार अमङ्गल करना उचित नहीं है। अथवा क्या तूने अपनी माताकी परीक्षाकेलिये यह भयंकर कृत्य किया है? जो कुछ हो, प्यारे पुत्र! इस समय तुझे ऐसा करना उचित नहीं है। तू मेरे दुःखकी ओर तो जरा देख कि, आज बारह वर्ष हो गये, मैंने अपने हृदयके एक टुकड़ेको किस दुःख दशामें छोड़ रक्खा है? पुत्र, दयाकर और अपनी यह सब माया समेट, जल्दी उठकर मुझे सुखी कर। पुत्रसे बहुत देरतक इसीतरह सूर्पनखा प्रार्थना करती रही, परन्तु पुत्र उसी हालतमें पड़ा रहा। अन्तमें उसने पुत्रको मरा समझा। वह निराश होकर और अपने प्यारे पुत्रके मस्तकको अपनी गोदमें रखकर रोने लगी। छाती कूटने लगी। उसे अपार दुःख हुआ। सच है, कहाँ तो पुत्रके अभ्युदयकी आशा और कहां अचानक उसकी-मृत्यु! ऐसी हालतमें किस माताको पुत्रका असह्य शोक नहीं होता?

हा! बेटा, तू अपनी दुःखिनी माताको छोड़कर अकेला कहां चल बसा? हाय! तूने विद्याके साधनमें इतने दिन-

तक कठिनसे कठिन दुःख सहे थे। मैं आजहीकेलिये तो इतनी आपत्तियां सह रही थी। तेरा विषम वियोग मैंने आज लों सहा। हाय! क्या वह सब इसी दारुण दुःख देखनेके लिये सहा था, जो आज भी तेरे पवित्र दर्शन मेरे भाग्यमें नहीं। हाय! ऐसे निर्जन जङ्गलमें मेरे प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रकी यह दशा किस दुरात्मा पापीने की है? हाय! पुत्र, किस निर्दयीके हाथ तेरे सुकोमल शरीरपर इस कठोरताके साथ चले हैं? वह मनुष्य नहीं चण्डाल है, जिसने मेरे निरपराध पुत्रको मारा है। अरे पापी! निर्दयी!! जरा तो मुझ अनाथिनीपर दया करता, जो मैं एक वार तो पुत्रसे प्रेमालाप कर लेती। हे सुन्दराकार! हे महावाहो! हे प्राणोंसे प्यारे पुत्र! हे चन्द्रमुख! तू तो अभी निरा वालक ही था। तुझे दैवने अपना ग्रास किसलिये वनाया? हे जीवनके अवलम्ब पुत्र! आज तेरे विना यह दुःखमय मेरा जीवन कैसे पूरा होगा? हाय! पुत्र, नहीं मालूम मुझ अभागिनीने पूर्व जन्ममें किस सती साध्वीके पुत्रका वियोग किया, जिससे आज मुझे भी यह भीषण यंत्रणा भोगनी पड़ी है। इसीतरह वहुत देरतक वह विलाप करती रही। अन्तमें जब कुछ शोकका आवेग कम हुआ, तब उसने सोचा कि— अव रोनेहीसे क्या होगा? जिस पापी दुराचारीने मेरे पुत्रकी दशा की है, अव तो उसीकी शोध लगाकर उसे भी इसी दशापर पहुंचानेकी कोशिश करूं। जिससे कुछ मुझे संतोष हो। इतना कहकर पुत्रके शिरको तो पृथिवीपर रक्खा और आप पुत्रवैरीके ढूंढ़नेको निकली।

थोड़ी दूर ही वह पहुंची होगी कि, उसने एक सुन्दर और जवान पुरुषको एक स्थानेपर बैठा हुआ पाया। पाठक जान गये होंगे कि, ये बैठे हुये और कोई नहीं लक्ष्मण हैं। सूर्पनखा उनका सुन्दर रूप देखकर आपेमें न रह सकी। उसके हृदयमें कामने अपना निवास जमाया। लक्ष्मणके हाथमें खड्ग भी मौजूद था, इससे उसने यह तो अच्छी तरह समझ लिया कि, मेरे पुत्रको इसीने मारा है, इसमें किसीतरहका सन्देह नहीं है। परन्तु मेरा हृदय तो इसकी सुन्दरतापर विरोध करना नहीं चाहता है। दूसरे यह भी है कि, पुत्र तो मर ही चुका है, वह अव पीछा आनेका नहीं, तव फिर इससे शत्रुताकरके ही क्या होगा? किन्तु सार तो इसमें है कि, यदि यह मेरा स्वामी हो जाय, तो क्या ही अच्छा हो? और तभी मेरा जीवन सुखमय हो सकता है। यह विचारकर उसने उसीवक्त अपने वेषको पलटकर युवती वालिकाका रूप वनाया। मानों ठीक सोलहवर्षीया वालिका है। सूर्पनखा वालिका बनकर लक्ष्मणके पास आई और रोने लगी। लक्ष्मणने उसे रोती हुई देखकर कहा कि, वालिके! तू कौन है? क्यों ऐसे सूनसान वनमें आई और किसलिये रोती है? वालिका बोली कि—मैं छोटी ही अवस्थामें अपने मामाके यहां आगई थी। मेरा पालन पोषण मामाजीने ही किया है। ज्यों २ मैं कुछ वड़ी होने लगी, मुझे ज्ञात हुआ कि, मामाजी जो मुझे पालते हैं, उनका अभिप्राय मेरे विषयमें कुछ और ही है। अर्थात्—मेरे ऊपर

उनकी नियत अच्छी नहीं है। यह सब हाल किसी तरह मैंने अपने पिताके पास पहुंचा दिया। पिताजी उसी-समय मुझे लिवानेको आ गये। मैं उनके साथ अपने घरपर जा रही थी। रास्तेमें इसी जगह विश्राम करना पड़ा। कुछ रात बाकी थी कि, हम उठकर चले। परन्तु खेद है कि चलते २ पिताजी तो कुछ आगे निकल गये और मैं रास्ता भूल गई। अब मैं नहीं जानती कि, घरका रास्ता किधर है? और न पिताजी ही अभीतक मुझे लिवानेको आये हैं। इसीकारण मुझे ऐसे स्थानपर ठहर जाना पड़ा है।

आज मेरा बड़ा भारी भाग्योदय है, जो मुझे आप सरीखे पुण्यपुरुषके दर्शन हुये। हे सुन्दरस्वरूप, आपके इस कामदेव सरीखे रूपपर मेरा यह तुच्छ हृदय न्यौछावर हुआ जाता है। बहुत उत्तम हो, यदि मुझ अनाथिनी बालिकाके साथ आप विवाहकर मुझे कृतार्थ करें। उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि—तुम कहती हो यह ठीक है, परन्तु मैं तुम्हें एक बात कहता हूं—वह यह कि, मैं अपने बड़े भाईके होते हुए विवाह नहीं कर सकता हूं। इसलिये तुम उन्हींके पास जाकर उनसे अपने विवाह की प्रार्थना करो। तुम यह फिकर न करो कि, मैं सुन्दर हूं, किन्तु मेरे भाई मुझसे भी कहीं अधिक सुन्दर हैं। तुम्हारी सुन्दरताके योग्य वे ही उचित जान पड़ते हैं। बालिका फिर बोली कि—आपका कहना ठीक होगा इसमें सन्देह नहीं, परन्तु मैं तो जहां तक समझती हूं आपके समान ही वे होंगे। लक्ष्मणने कहा—जबतक कि तुमने उन्हें

देखा नहीं है, तभीतक ऐसा कहती हो, परन्तु जब उनके दर्शन करोगी तब मेरे कहनेपर विश्वास आवेगा कि, मुझमें और उनमें कितना फर्क है? मेरे कहनेका विश्वास करो कि, मुझमें और उनमें सुमेरुपर्वत और सरसोंके इतना अन्तर है।

लक्ष्मणके कहे अनुसार सूर्पनखा रामचन्द्रके पास गई और उनसे बोली कि, मुझे कुछ आपसे प्रार्थना करनी है, आप उसे सुन लें तो बड़ी कृपा हो। लक्ष्मणजीने मुझे आपके पास भेजी है। मैं एक अनाथ बालिका हूं। दयाकरके मुझसे आप विवाह कर लें। आपके प्रेमने मुझे यहां लाकर पटकी है। उसकी काम भरी कथा सुनकर रामचन्द्र बोले कि– बालिके, पहले तुम यह तो कह जाओ कि, लक्ष्मणसे तुमने क्या २ कहा था? यह कहने लगी कि– मैं अपने घरका रास्ता भूलकर इधर जा पहुंची जहां लक्ष्मण बैठे हुये थे। उनके सुन्दर रूपको देखकर मैं उन-पर मुग्ध हो गई। उस समय मैंने यह विचारकर कि अभी मैं कुंवारी हूं, इनके साथ मेरा विवाह हो जानेमें कोई हानि नहीं है, उनसे अपने विवाहकेलिये प्रार्थना की। तब वे बोले कि–तुम हमारे बड़े भाईके पास जाकर उनसे अपनी प्रार्थना करो। मुझे अभी अवकाश नहीं है। उनके कहे अनुसार मैं आपके पास आई हूं। आशा है कि, आप मुझ अनाथिनी बालाको आश्रय देकर कृतार्थ करेंगे। रामचन्द्रने उसके उत्तरमें कहा कि–तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु अब तुम मेरे योग्य नहीं रहीं। कारण कि–

तुम पहले लक्ष्मणके साथ अपने विवाहकी इच्छा कर चुकी हो। तुम मेरे भाईकी स्त्री हो चुकी, इसलिये तुम अब भ्रातृजाया (भाईकी बहू) कहलानेके योग्य हो। तुम लक्ष्मणके ही पास जाओ। रामचन्द्रके कहनेसे वह फिर लक्ष्मणके पास गई और जो कुछ रामचन्द्रने उससे कहा था उसे लक्ष्मणको सुना दिया। लक्ष्मणने कहा—जब कि तुमने हमारे बड़े भाईसे अपने विवाहकी इच्छा की है, तो अब तुम मेरे योग्य भी नहीं रहीं। यह बात सभी जानते हैं कि, बड़े भाईकी स्त्री माताके समान होती है। इसलिये तुम भाईके पास ही जाकर उनसे अपनी इच्छा पूरी करो। गर्ज यह कि, कामसे पीड़ित होकर वह कई बार रामचन्द्रके पास गई और कई बार लक्ष्मणके पास। सच है—जो कामके वश हो जाता है फिर उसे अपने आपेका भी ख़याल नहीं रहता है। नकली सूर्पनखाकी यह दशा देखकर उससे सीताने कहा कि— तू बड़ी मूर्खा है। तुझे अपने आपेका भी ख़याल नहीं है। जरा विचार तो कर, कि कहीं काकके (कौएके) संसर्गसे मकान भी काला हुआ है? सीताके इस गहरे कटाक्षको सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया। वह यह कहती हुई कि, हां तुझे काकके संसर्गसे ही मकानको काला होता हुआ दिखलाऊंगी, चली गई।

जाकर उसने ढोंग बनाया। शरीरमें नखोंसे घाव कर लिये। केशोंको बिखेर डाले और शरीरमें खूब धूल रमा ली। इसप्रकार अपने वेषको बिगाड़कर वह अपने पतिके पास गई और मूर्च्छा खाकर पृथिवीपर धड़ामसे गिर पड़ी।

खरदूषणने शीतलोपचार करके उसे सचेत की और उससे पूछा कि– प्यारी ! आज यह क्या हुआ ? क्यों इतनी कांप रही हो ? जरा वताओ तो, किसने तुम्हारी यह अवस्था की है ? मेरा हृदय तुम्हारी यह अवस्था सह नहीं सकता । जिस दुराचारीने तुम्हारी यह अवस्था की है, समझो कि, आज उसे आठवां चन्द्रमा लगा है । सूर्पनखा वोली–प्राणनाथ ! कुछ न पूछिये, आज जो मेरी हालत है उसे मैं ही जानती हूं। इतना कहते २ वह रोने लगी और छाती कूटने लगी । खरदूषणने वहुत मुश्किलसे उसे समझाकर उसके इस आकस्मिक दुःखका कारण पूछा । वह वोली–स्वामी ! दण्डकवनमें दो मनुष्य ठहरे हुये हैं । हाय ! उन पापियोंने–दुराचारियोंने—मेरा सर्वनाश कर डाला । मेरे प्यारे पुत्रको मार डाला । सुनते ही खरदूषणको भी वहुत क्रोध आगया । उसे किसी तरह रोककर उसने आगेका हाल पूछा । वह कहने लगी कि–जव कि पुत्रकी यह भयंकर दशा मैंने देखी, तव मेरा सव साहस न जाने कहां चला गया । मैं पुत्रमस्तकको अपनी गोदमें रखकर रो रही थी कि, उन पापियोंमेंसे एकने आकर मुझसे अपनी बुरी वासना जाहिर की । मैंने उस बुरी हालतमें भी उसे वहुत धिकारा । इतनेपर भी वह दुराचारी मुझसे बलात्कार करने लगा । मैं बड़ी ही कठिनतासे अपने सतीधर्मकी रक्षाकरके आपके पास आ पाई हूं । आज मैं अपनेको वड़ी सौभाग्यवती समझती हूं, जो मेरा धर्म सुरक्षित रह गया । यह सव आपहीके पुण्यका माहात्म्य है ।

प्राणनाथ ! बड़ी आश्चर्यकी बात है, जो आपके रहते हुये भी मेरी यह दशा हो। उन पापियोंकी नीचतापर तो जरा विचार कीजिये कि एक, आपके प्राणप्यारे पुत्रको उन्होंने मार डाला और दूसरे आपकी धर्मपत्नीकी बुरी दशा करनी चाही। हे स्वामी ! मुझसे इन रंकोंके द्वारा किया हुआ यह घोर अपमान सहा नहीं जाता है। ऐसे अपमानको सहकर जीनेसे तो कहीं मर मिटना हजार गुणा अच्छा है। हे जीवनसर्वस्व ! सन्तोष तो मुझे तब ही होगा जब कि इन पापियोंके मस्तकोंको पृथिवीपर ठोकरें खाते अपनी आंखोंसे देखूं और मैं भी उसे अपने पावोंसे ठुकराऊं। उत्तरमें खरदूपणने कहा कि— प्रिये, इसकी चिन्ता तुम न करो। तुमसे अधिक कहीं मुझे दुःख है। तुम महलमें जाओ। मैं भी बदला लेनेके लिये तयारी करता हूं। अपनी स्त्रीको समझा बुझाकर खरदूपण युद्धके लिये तयार हुआ। उसकी यह युद्धकी तयारी देखकर उसके मंत्रियोंने समझाया कि—महाराज ! जरा धीरता रखिये। इतनी जल्दीसे काम नहीं हुआ करता है। जरा विचारिये तो, जो खड्ग बारह वर्ष तपश्चर्या कर सिद्ध किया गया था, उसे एक समय मात्रमें जिसने हाथमें ले लिया क्या वह साधारण पुरुष है ? नहीं। ऐसे महाबली पुरुषका जीत लेना भी साधारण काम नहीं है। इसलिये उचित तो यह है कि—यह खबर लङ्काके महाराजके पास भी भेज देनी चाहिये। भानजेके शोकसे दुःखी होकर वे भी अपनी सहायता करेंगे। मंत्रियोंके कहे अनुसार खरदूपणने यह सब हाल लङ्काधीशके पास कहला भेजा।

उधर जव लक्ष्मण रामचन्द्रके पास पहुंचे, तो उनसे रामचन्द्रने कहा—क्यों समझे, वह कन्या कौन थी? मैं तो जहांतक समझता हूं कि यह कोई राक्षसी अपनेको देखने आई थी। दोनों भाई तो परस्परमें इस कन्याके वावत वातचीत कर रहे थे कि इतनेमें पुत्रशोकसे दुखी होकर खरदूषण अपनी सेनाको लेकर इनपर लड़नेके लिये चढ़ आया। सीता आकस्मिक इतना भारी समारंभ देखकर वहुत डरी। और भयकी मारी स्वामी! स्वामी!। कहती हुई रामचन्द्रकी गोदमें जा गिरी। रामचन्द्रने जव ऊपर दृष्टि उठाई, तव उन्हें भी कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने धनुषकी ओर आंखका संकेत करके लक्ष्मणसे कहा—भाई, जल्दी तयारी करो। देरीका समय नहीं है। ये लोग छली जान पड़ते हैं। इनके विचार बुरे जान पड़ते हैं। यह सुनकर लक्ष्मणने कहा कि—स्वामी, आप किसी तरहकी चिन्ता न करें। मैं इसी समय जाकर इन लोगोंको इनके कर्त्तव्यका प्रायश्चित्त दिये देता हूं। आप यहींपर विराजे रहें। क्योंकि सीताको अकेली ऐसी जगह छोड़ना उचित नहीं है। एक और प्रार्थना है। वह यह कि—जव तक मैं वापिस न आ जाऊं, तव तक आप यहीं रहें। यदि मुझपर अधिक विपत्ति पड़ेगी, तो मैं सिंहनाद करूंगा, उस समय मेरी सहायता करनेको आप आइयेगा। यह कह कर लक्ष्मण धनुष उठाकर युद्ध भूमिकी ओर चले। लक्ष्मणकी धीरताने विद्याधरोंको चकित कर दिया।

युद्ध भूमिमें पहुंचते ही लक्ष्मणने विद्याधरोंकी ओर दृष्टि

उठाकर उन्हें ललकारा कि—हे विद्याधरो ! ठहरो, कहां जाते हो ? यदि कुछ वीरता रखते हो तो, मुझे उसका परिचय दो । लक्ष्मणका तो इतना कहना था कि वे सब चारों ओरसे इसके ऊपर टूटे और लगे बाणोंकी वर्षा करने। सारी युद्धभूमि शरोंसे ढक गई । परन्तु लक्ष्मणको कुछ भी हानि न पहुंची । लक्ष्मण कोई ऐसा वैसा साधारण मनुष्य तो था ही नहीं, जो इन लोगोंसे पराजित होता । यद्यपि वह एक ही था परन्तु फिर भी उसने हजारों विद्याधरोंको सदाके लिये पृथिवीमें सुला दिये । खर-दूषणकी सारी सेना कर्त्तव्यहीन हो गई थी । शत्रु सेनाके एक साथ आनेवाले हजारों शरोंको अकेला लक्ष्मण रोक देता था । इस तुमुल युद्धमें शत्रुकी सेनामें एक विराधित नामक विद्याधर भी था । उसने लक्ष्मणको अकेला ही लड़ता हुआ देखकर विचारा कि—खरदूषण मेरा शत्रु है । क्योंकि इसी पापीने मेरे पिताका वध किया था । परन्तु उस समय मुझमें शक्तिके न होनेसे मुझे शत्रुकी ही सेवा करनी पड़ी थी । इस समय बड़ा अच्छा अवसर मिला है । अब यदि पिताका वैर निकाला जाय, तो बहुत अच्छा हो । यह बड़ा वीर है । इसकी सहायतासे मेरी इच्छा पूर्ण हो जायगी । यह विचार कर वह अपनी सेनाको लेकर लक्ष्मणके पास गया और उसे नमस्कार कर बोला—हे स्वामी, मैं आपकी सेवा करनेके लिये आया हूं । पापी खरदूषणने मेरे पिता को मार डाला है। उसके बदलेकी इच्छासे ही मैं आपके पास सहायताके

लिये आया हूं। आये हुयेको सहायता देना आप सरीखे उत्तम पुरुषोंका कर्त्तव्य है। उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि—इसकी तुम चिन्ता न करो। मुझे एक बात तुमसे पूछना है। वह यह कि—तुम मुझे धोखा देनेको तो नहीं आये हो? अस्तु आये भी हो, तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं है। मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। उत्तरमें विराधितने कहा कि—महाराज, यह खयाल कभी नहीं करें। मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि मैं आपके पास बुरी नियतसे नहीं आया हूं। मुझे तो अपने पिताका बदला लेना जरूरी है। बस यही कारण मेरे आनेका है। महापुरुष, खरदूषण बहुत बली है, सो उसे तो आप जीतें और बांकी सेनाके लिये तो मैं अकेला ही बहुत हूं। यह कह कर विराधित तो खरदूषणकी सेनासे लड़ने लगा और लक्ष्मणकी खास खरदूषणसे मुठभेड़ हुई। विराधितने जैसा कहा था, उसके अनुसार उसने खरदूषणकी सेना अपने वश कर ली और लक्ष्मणने खरदूषणको जीत लिया।

जब खरदूषणकी पराजयका हाल रावणको मिला, तो वह उसी समय पुष्पक-विमानमें बैठकर खरदूषणकी सहायताके लिये रवाना हुआ। रास्तेमें आते समय दण्डक बनमें उसे अकेली बैठी हुई सीता दीख पड़ी। उसके अनुपम सौन्दर्यने आज त्रिखण्डके राजा और राक्षसकुलभूषण वीर रावण तकको अपने वशमें कर-लिया। उसने उसके लानेके लिये बहुत उपाय किये,

परन्तु एक भी उपाय उसका चल नहीं सका । अन्तमें उसने अपनी विद्याको उसके लानेको भेजी । विद्या गई भी, परन्तु वह भी कुछ नहीं कर सकी । रामचन्द्र सरीखे तेजस्वी पुरुषके साम्हने उसे निष्प्रतिभ होना पड़ा । वह आकर रावणसे बोली कि—हे स्वामी, मेरी हिम्मत नहीं कि मैं सीताको रामचन्द्रके पाससे उठा ला सकूं । सुनकर रावणने उससे कहा—अस्तु, तू नहीं ला सकती है तो न सही । यह बता कि वह कैसे लाई जा सकती है ? और रामचन्द्र यहांसे कैसे हट सकेंगे ? विद्या बोली कि हां, इसका एक उपाय है । वह यह कि– युद्धमेंसे यदि लक्ष्मण सिंहनाद करें, तो रामचन्द्र उसे सुनकर वहांसे अलग हो सकते हैं । तुम यहांसे थोड़ीसी दूर जाकर सिंहनाद करो । उसे सुनकर रामचन्द्र अपने भाईका सिंहनाद समझकर लक्ष्मणके पास जावेंगे । रावणके कहे अनुसार विद्याने सिंहनाद किया । उसे रामचन्द्र और सीताने सुन लिया । सीता रामचन्द्रसे बोली कि– स्वामी, देखिये तो लक्ष्मण सिंहनाद कर रहे हैं । आप उनकी सहायताके लिये पहुँचिये । मालूम होता है, लक्ष्मण संकटमें हैं ।

रामचन्द्र उसी समय वहांसे रवाना हुये और सीताकी रक्षाके लिये जटायु पक्षीको उसके पास छोड़ गये । थोड़ी देरमें वे लक्ष्मणके पास पहुंच गये । उधर रावण इसी ताकमें था कि कब रामचन्द्र यहांसे जावें और अब मेरा अभीष्ट पूर्ण हो । रामचन्द्रके जाते ही रावण

सीताको अकेली बैठी हुई देखकर उठा ले चला, जैसे पक्षी मांस पिण्डको ले जाता है। जटायु रोती हुई सीताको ले जाते हुये रावणको देखकर उसके ऊपर झपटा। और उसके पास पहुंच कर रावणके सारे शरीरको अपने तीखे २ नखोंसे घायल करने लगा। यह देख रावणको बड़ा क्रोध आया। उसने उस बेचारे पक्षीको एक ऐसा जोरका थप्पड़ मारा कि वह अधमरा होकर पृथिवीपर धड़ामसे गिर पड़ा। यह घटना जाते हुये रत्नजटी नामके एक विद्याधरने देखी। उसने आकर रावणसे कहा कि—हे नीच विद्याधर! बेचारी एक अबला स्त्रीको कहां लिये जाता है? तुझे इस घोर कर्मके करते लज्जा नहीं आती। उस बेचारेसे सीताका रोना न सहा गया। वह निरुपाय हो रावणसे युद्ध करने लगा। अपनेसे एक छोटेसे विद्याधरकी ऐसी धृष्टता देखकर रावणको बड़ा क्रोध आया। उसने उसकी सब विद्यायें छीनकर उसे समुद्रमें डाल दिया जैसे कोई कटे पक्षका पक्षी डाल दिया जाता है। परन्तु उसका पुण्य प्रकर्ष खूब था, इस लिये वहांपर भी उसे स्थल मिल गया। वह अपने कुछ कपड़े एक बांसमें बांधकर इस अभिप्रायसे ऊपर धुजाके समान उड़ाने लगा, जिससे किसी आकाशमार्गसे आने जाने वालेको इधरकी नजर पड़ जाय।

उधर पापी रावण सीताको लिये जा रहा था। रोती हुई सीताने उससे कहा कि—पापी! नीच!! तू मूझे ले जाकर क्या सुख भोग सकेगा? क्या तू नहीं जानता

कि सब पाप तो एक ओर है और परस्त्रीको सेवनका पाप एक ओर है। अर्थात् सब पापोंमें परस्त्रीके सेवनका बहुत अधिक पाप होता है। रावणने कहा–सुन्दरी! तू यों ही व्यर्थ रोकर अपनेको क्यों खराब करती है? तुझे तो आज अपना सौभाग्य समझना चाहिये, जो तुझपर विद्याधरोंके अधिपतिकी कृपा हुई। रामचन्द्र मनुष्य हैं। उनसे तुझे उतना सुख नहीं मिल सकता, जितना मेरे द्वारा मिल सकता है। मेरी अठारह हजार रानियां हैं, उन सबमें तुझे ऊंचा आसन दिया जायगा। अर्थात्–मेरी तू पट्टरानी बनेगी। तेरे लिये बड़ी खुशीका दिन है। उसमें भी यदि तू रोती है, तो सचमुच तुझ सी अभागिनी संसारमें कोई नहीं होगी। सुनकर सीता निडर होकर बोली–हे मूर्ख, हे दुराचारी, क्यों तू बुरी वासनाओंके द्वारा पापकर्मका बन्धकर रहा है? रामचन्द्र मनुष्य हैं, रहो। इससे क्या? तू मनुष्यका माहात्म्य नहीं जानता, इसीसे ऐसा कह रहा है। शायद तुझे अपने विद्याधर होनेका अभिमान है। क्योंकि मनुष्य तो आकाशमें नहीं उड़ सकते और तू आकाशमें उड़ता है। परन्तु याद रख कि, आकाशमें उड़नेवाला काक पृथिवीपर चलनेवाले केसरीकी समानता कभी नहीं कर सकेगा। सीता बहुत कुछ रोई, बिलखी। परन्तु दुष्ट रावणने उस बेचारीको नहीं छोड़ी। ले जाकर लङ्काके बगीचेमें रख दी। वह प्रतिदिन उसके वश करनेके उपाय करने लगा। परन्तु जिस सती साध्वीने अपना चित्त अपने प्राण प्यारेके चर-

णोंमें समर्पित कर दिया है, उसके लिये यह कब संभव था कि वह अब दूसरेकी अङ्कशायिनी हो? कभी नहीं। अब कुछ रामचन्द्रकी कथाका सिलसिला छेड़ा जाता है,—

जब रामचन्द्र लक्ष्मणके पास पहुंचे, तब वहां उन्होंने लक्ष्मणको अच्छी हालतमें देखा। लक्ष्मणने भी देखते ही रामचन्द्रसे कहा—पूज्य, सीताको अकेली कहां छोड़ आये हो? रामचन्द्रने कहा—भाई, मैं तो तुम्हारा सिंहनाद सुनकर ही चला आया हूं। लक्ष्मणने कहा—स्वामी, मैंने तो सिंहनाद नहीं किया। जाना जाता है, यह किसी दुष्टकी चालाकी है। उसने सीताके ले जानेकी इच्छाकी है। आप जल्दी जाइये। कुछ अमङ्गलकी संभावना दीख पड़ती है। मैंने इन सब विद्याधरोंको अपने वश कर लिये हैं। अब मुझे सिंहनाद करनेकी क्या जरूरत थी? सुनते ही रामचन्द्र वापिस आये। आकर देखते हैं, तो सीता स्थानपर नहीं है। उन्होंने चारों ओर घूम २ कर देखा, परन्तु सीताका कहीं पता न चला। उन्हें एक जगह अधमरा जटायु पड़ा दीखा। उसकी मृत्यु शीघ्र होनेवाली समझकर उसे उन्होंने नमस्कारमंत्र सुनाया। उसके फलसे जटायु स्वर्गमें जाकर देव हो गया।

रामचन्द्र सीताके वियोगको न सह सके। मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े। जब ठण्डी वायुका स्पर्श हुआ, तब कुछ २ चेतना आई। वे वियोगसे इतने अधीर

हो गये कि उन्हें अपने स्वरूपका भी भान नहीं रहा। वृक्ष और पर्वतोंसे अपनी प्यारीका हाल पूछने लगे। हे पर्वतो, मैं अपनी प्यारी अभी थोड़ी ही देर हुई होगी कि तुम्हारे पास छोड़ गया था। अब वह यहां नहीं दिखाई पड़ती, कहो तो किधर गई है? इतनेमें रामचन्द्रके शब्दकी प्रतिध्वनि हुई, उन्होंने समझा कि पर्वतने मेरे प्रश्नका उत्तर दिया है। तब फिर रामचन्द्रने कहा कि जब तुमने उसे देखी है, तो जल्दी बताओ कि वह किधर गई है? मुझसे उसका वियोग सहा नहीं जाता है। बहुत कुछ उन्होंने इधर उधर शोध की, परन्तु कहीं उसका पता नहीं चला। अन्तमें वे फिर मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े। सीताका वियोग उनके लिये वज्रके आघातका काम कर गया। इतनेमें ही लक्ष्मण और विराधित भी वहीं आ पहुंचे। लक्ष्मण अपने बड़े भाईकी यह हालत देखकर समझ गये कि सीता नियमसे हरी गई है। लक्ष्मणने पहुंचकर भाईकी अभिवन्दना की। परन्तु रामचन्द्र तो इस समय अपने आपेमें ही न थे। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि—तू कौन है? और क्यों ऐसे भयानक जङ्गलमें आया है? लक्ष्मणने यह देख कहा कि—पूज्य, क्या मुझे अभी भूल गये? मैं तो आपका दास लक्ष्मण हूं। सुनकर रामचन्द्रको कुछ स्मृति हो आई। उन्होंने कहा लक्ष्मण! प्यारे लक्ष्मण!! सीताको कोई पापी ले उड़ा है। सुनकर लक्ष्मणको भी बहुत दुःख हुआ। दोनों मिलकर रोने लगे। विराधितने उन्हें किसी तरह समझा

वुझाकर रोनेसे रोका। विराधित भी बड़ी चिन्तामें पड़ गया। उसे अपने उपकारकर्त्ताके ऊपर अनायास दुःख आनेसे बड़ा दुःख हुआ। यहींपर विराधितसे वानरवंशियोंका स्वामी सुग्रीव आकर मिला और उसने अपने ऊपर वीती हुई सारी आपत्ति कह सुनाई। विराधितने रामचन्द्रके दुःखका भी हाल उससे कह दिया। सुग्रीवने कहा—विराधित, वात यह है कि यदि तुम्हारे स्वामी मेरा दुःख दूर कर देंगे, तो मैं भी उनकी स्त्रीका हाल उन्हें जल्दी ला दूंगा। इस प्रतिज्ञामें कभी अन्यथापन न होगा। विराधितने यह हाल रामचन्द्रसे जाकर कहा कि—हे महाराज! वानरवंशियोंका राजा और एक अक्षौहिणी सेनाका स्वामी सुग्रीव आपके पास आया है। वह कहता है कि यदि रामचन्द्र मेरी स्त्रीका दुःख दूर कर देंगे, तो मैं भी सातवें ही दिन उनकी प्यारीका हाल लाकर उन्हें सुना दूंगा। यदि आज्ञा हो, तो वह आपके पास उपस्थित किया जाय। रामचन्द्रके कहे अनुसार सुग्रीव उनके साम्हने उपस्थित किया गया। सुग्रीवके आनेपर उसका रामचन्द्रने यथोचित आदर किया। दोनोंकी परस्पर कुशलवार्ता हुई। इसके वाद सुग्रीव लक्ष्मणसे मिला। इन दोनोंके भी परस्परमें कुशल प्रश्न हुये।

जव सव स्वस्थचित्त हुये, तव रामचन्द्रने सुग्रीवसे पूछा कि—सुग्रीव, तुम्हें क्या दुःख है? सुग्रीवने कहा कि—महाराज! मेरी राजधानी किष्किन्धा है। मेरी तारा नामकी स्त्री है। वह वड़ी खूवसूरत है। कोई दुष्ट विद्या-

धर उसके सौन्दर्यपर मुग्ध हो गया है। वह मुझ सरीखा रूप धारण कर मेरे घरमें घुस गया है। मेरी प्रियाने उसकी चाल ढालसे यह जान कर कि यह खास मेरा पति नहीं है, उसे घरमें नहीं आने दिया। ताराके आशयको समझ-कर उस दुष्टने मेरे घरकी जो २ गुप्त वातें थीं, वे सब वैसीकी वैसी कह सुनाईं । सुनकर मेरी प्यारीने उससे कहा—हे दुष्ट! हे दुराशय!! तूने सब वातें तो मेरे स्वामीके सरीखी कह दीं, परन्तु उनके सरीखा चलना तो अभीतक तुझे नहीं आया। इतना उसका कहना था कि उसने मुझे अपने घर आता हुआ देखकर मेरी चाल भी सीख ली! उस समय ताराने वड़ी होशयारी की, जो मुझे और उसे एक सरीखा देखकर घरके किवाड़ वन्द कर लिये।

जब मैं अपने घरके द्वारपर पहुंचा, तब उस नकली सुग्रीवसे कहा—पापी! तू कौन है? और किस लिये ऐसा छल बनाकर मेरे घरमें घुसा चाहता है? उत्तरमें मेरी तरह उसने भी जवाब दिया कि, तू मेरे घरमें क्यों घुसा आता है? इतना कह कर लड़ा भी। यह विचित्र लीला देखकर मंत्रियोंने दोनोंको घरमें घुसनेसे रोक दिया और कहा कि जबतक इस बातका निर्णय न हो जायगा कि, सच्चा सुग्रीव कौन है तबतक किसीको हम घरके भीतर नहीं घुसने देंगे। हम दोनों ही घर बाहिर रहने लगे। मुझसे अपनी प्यारीका वियोग अधिक नहीं सहा गया, इस लिये मैं रावणके पास पहुंचा। परन्तु उसके द्वारा भी मेरा कुछ उपकार नहीं हुआ। इसकी जांच करनेको

वहुतसे विद्याधर और हनुमान आदि भी आये, परन्तु किसीकी वुद्धि भी इसका फैसला नहीं कर सकी। अन्तमें सव ओरसे निरुपाय होकर मैं आपकी सेवामें आया हूं। मुझे आशा है कि आपके द्वारा नियमसे मेरा दुःख दूर हो सकेगा। आज मेरा वड़ा भारी पुण्य है, जो आप सरीखे महात्माके पवित्र दर्शन हुये। महाराज, यही मेरी दुःख कहानी है।

सुनकर रामचन्द्रने कहा—सुग्रीव, घवराओ मत, मैं तुम दोनोंकी ठीक २ जांच करके निवटेरा कर दूंगा, और तुम्हारी प्रिया तुम्हें दिलवा दूंगा। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि, मैं तुम्हारा कार्य करूंगा। इसके वाद तुम्हें भी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी होगी। सुग्रीवने रामचन्द्रके कहनेको स्वीकार किया। इसके वाद सुग्रीव रामचन्द्रको अपनी राजधानीमें लिवा ले गया और शहरके वाहिर उसने उन्हें ठहरा दिये। वहींपर दूत भेजकर नकली सुग्रीव युद्धके लिये वुलवाया गया। वह भी अपनी विशाल सेनाको लेकर युद्धके लिये आया। दोनों सुग्रीवोंका युद्ध हुआ। सच्चा सुग्रीव मायामय सुग्रीवकी गदासे मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा। उसे उसके वन्धु अपने डेरेपर लिवा ले गये। मायामई सुग्रीव यह समझ कर कि सुग्रीव मर गया है, आनन्द मनाता हुआ घर चला। जव सुग्रीव सचेत हुआ, तो उसने रामचन्द्रसे कहा कि, महाराज, उस पापीको आपने क्यों जाने दिया? उत्तरमें रामचन्द्र वोले—सुग्रीव, क्या कहें, तुम दोनों एक

ही सरीखे थे, इसलिये निश्चय नहीं किया जा सका। कहीं धोखेमें तुम्हारी मृत्यु हो जाती, तो बड़ा अनर्थ हो जाता। यही विचार कर हमने उसे छोड़ दिया। अस्तु, कुछ चिन्ता नहीं है। उसे फिर बुलवाते हैं। यह कह कर रामचन्द्रने उसी नकली सुग्रीवको फिर युद्धके लिये बुलवाया। वह फिर भी बड़ी हिम्मतके साथ लड़नेको युद्ध-भूमिमें आया। अबकी बार जहां उसने रामचन्द्रके दिव्य रूपको देखा कि—उसकी जो वैताली विद्या थी, वह तत्काल भाग गई। नकली सुग्रीवका अब वह स्वरूप नहीं रहा। वह साहसगति विद्याधरके रूपमें आ गया। यह देख सबने असली सुग्रीवको पहचान लिया। सबोंने उसका बहुत सत्कार किया। सुग्रीव अपने पुत्रादिके साथ घरपर गया और वियोगसे कृश हुई अपनी प्यारीसे मिला। रामचन्द्रकी अपार कृपासे सुग्रीवके दुःखके दिन गये और सुखका समय आया। वह अपनी प्यारीके साथ आनन्द भोगने लगा। उसे आनन्द करते छह दिन बीत गये। रामचन्द्रके साथ की हुई प्रतिज्ञाका उसे कुछ भी खयाल नहीं रहा।

उधर जैसे २ दिन बीतने लगे, रामचन्द्रका दुःख अधिकाधिक होने लगा। उन्होंने एक दिन लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण! देखो तो संसारकी अवस्था। जब कि मनुष्यको दुःख होता है, तब तो वह उसकी निवृत्तिके बहुतेरे उपाय करता है। और सबकी खुशामद करता फिरता है परन्तु जब उसका काम निकल जाता है, फिर उसे

किसीका खयाल भी नहीं रहता। देखो सुग्रीवकी बातें, जो अपना काम निकल जानेपर प्रतिज्ञातक भूल गया। सच है, दूसरोंके कार्यमें सच्ची भक्ति बताने वाला कोई विरला ही महात्मा होता है। यह सुनकर लक्ष्मण को सुग्रीवकी इस स्वार्थबुद्धिपर बड़ा क्रोध आया। वे उसी समय सुग्रीवके घरपर जा पहुंचे। उन्हें देखते ही सुग्रीव बहुत घबराया। वह अपनी स्त्रीका हाथ पकड़कर सिंहासनसे नीचे उतरा और लक्ष्मणको उसपर बिठाकर आप हाथ जोड़कर उनके सन्मुख बैठ गया। लक्ष्मणने उससे कहा—सुग्रीव! तुम्हारे लिये क्या यही उचित था? प्रतिज्ञा पूरी करना क्या इसे ही कहते हैं? हमारे भाई तो वनमें बैठे हुये दुःख भोगें और तुम यहां आनन्द भोगो। स्त्रीके विरह दुःखकी कठिनता जानते हुये भी तुम्हें दूसरेके दुःखका खयाल नहीं होना, यह कितने आश्चर्यकी बात है। तुम्हारा कुछ दोष नहीं। नीतिकारने बहुत उत्तम कहा है कि, दूसरेके दुःखको अपना दुःख समझनेवाले महात्मा बहुत ही विरले होते हैं। आज सात दिन हो गये, वह तुम्हारी प्रतिज्ञा कहां गई? ठीक है जो स्त्रियोंके सुखमें लीन होते हैं, उन्हें अपने नियम व्रतादिका कुछ खयाल नहीं रहता।

सुग्रीवने कहा—स्वामी! आज है तो सातवां ही दिन न? यदि समय पूर्ण होते २ मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करूं, तो मुझे दोष दीजियेगा। इतनी प्रार्थना कर वह लक्ष्मणके साथ २ रामचन्द्रके पास गया और उनके चरणोंमें गिर-

कर उसने अपने अपराधकी उनसे क्षमा मांगी। इसके वाद उसने सव विद्याधरोंको आज्ञा दी कि—यदि तुम मेरा जीवन चाहते हो तो. शीघ्र ही जाकर जहा हो वहांसे साध्वी सीताके समाचार ले आओ। सुग्रीवकी आज्ञा होते ही सव विद्याधर सीताके समाचार लानेको चारों ओर रवाना हुये। उनमेंसे एक विद्याधर उधर भी जा निकला, जहां रावणने रत्नजटीकी सव विद्यायें छीनकर उसे समुद्रमें डाल दिया था। रत्नजटी एक द्वीपमें हाथमें ध्वजा लिये उधर आने जाने वालोंके लिये कुछ इशारा कर रहा था। उसे देखकर वह विद्याधर आकाशसे नीचा उतरा और उसने रत्नजटीको पहचानकर उससे पूछा कि—हे मित्र! तुम यहां कैसे आ पड़े? उत्तरमें रत्नजटीने कहा—मित्र! क्या कहूं, यह सव रावणकी कृपाका फल है। उसने मेरी सव विद्यायें नष्ट कर डाली हैं, इसीसे मैं यहां आकर गिरा हूं। आये हुये विद्याधरने फिर पूछा—रावणके साथ शत्रुता होनेका क्या कारण है? रत्नजटी वोला—रावण रामचन्द्रकी स्त्रीको हर ले जा रहा था। उसे रोती हुई देखकर मुझे वहुत दया आई। मैंने उसके पीछे २ जाकर कहा कि—दुराचारी! इस रोती हुई वेचारी साध्वी वालिकाको कहां लिये जाता है, वस इतना मेरा कहना था कि वह मारे क्रोधके मुझपर जल गया। मेरी सव विद्यायें भी उसने उसी वक्त नष्ट कर दीं और मुझे यहां पटक दिया। उसने पूछा, क्या यह वात सच है कि, रावण ही सीताको ले गया है? और तुम उस ले जाने वालेको अच्छी तरह पहचानते हो?

रत्नजटीने कहा—आप इसमें बिल्कुल सन्देह न करें। मैं ठीक २ कह रहा हूं। जब उस आये हुये विद्याधरको यह विश्वास हो गया कि, सीताको रावण ही हर ले गया है, तब रत्नजटीको अपने विमानमें बैठाकर वह उसे सुग्रीवके पास किष्किन्धापुरीमें ले गया और सुग्रीवसे उसकी भेट करा दी। रत्नजटीने वह सब घटना सुग्रीवसे भी कह सुनाई जो उसपर बीती थी। सुनकर सुग्रीवको भी बहुत आनन्द हुआ। वह उसे रामचन्द्रके पास लिवा ले गया। सुग्रीवने वहां पहुंचकर रामचन्द्रसे हंसकर कहा—महाराज! यह रत्नजटी सीताका बहुत हाल जानता है। आप इसे एकान्तमें ले जाकर सब खुलासा हाल पूछ लें। रामचन्द्र उसे एकान्तमें ले गये और उससे सब हाल पूछ लिया। रत्नजटीने जैसा कुछ देखा था, वैसाका वैसा ही कह सुनाया। रामचन्द्रने रावणकी नीच वृत्तिपर उसे परोक्षमें धिक्कार कर कहा—हे नीच! हे विद्याधरकुलकलङ्क!! देखूं, तू मेरी प्रियाको लेजाकर कैसे सुखपूर्वक जीता है? उन्होंने साथ ही अपने सामन्तोंपर आज्ञा की कि वीरो! जल्दी तयारी करो। आज हमें रावणकी राजधानीमें चलना है और उसे पराजित कर उससे प्रियाको छुड़ाकर लाना है। उत्तरमें उन्होंने कहा कि, महाराज! वह कोई साधारण पुरुष नहीं है इस लिये पहले यह बात जानना जरूरी है कि, सीता वहाँ सचमुच है या नहीं? है तो कहांपर है? और रावण इस समय किस काममें लग रहा है? इसके बाद उचित उपाय

विचारकर करना चाहिये। रामचन्द्रने उनका कहना स्वीकार किया और पहले सब हाल जान लेनेके लिये आज्ञा दी। परन्तु प्रश्न यह आकर उपस्थित हुआ कि, कौन जावे। सबोंने विचारकर निश्चय किया कि, इस कामके करने योग्य हनुमान ही है और कोई इसे नहीं कर सकता। इसे लिये उसे बुलवानी चाहिये। सबके विचारानुसार हनुमान बुलवाया गया। हनुमान रामचन्द्रके आदेशके अनुसार उसी समय आकर उपस्थित होगया और रामचन्द्र तथा सुग्रीवादिसे बड़ी नम्रताके साथ मिला। सबोंने उसकी विनीतताकी खूब प्रशंसा की और यह भी कहा कि– हनुमान प्रबल प्रतापी है, वह सीताकी खबर लंका जाकर ला सकेगा'। सुनकर हनुमानने कहा आप चिन्ता न करें मैं लंका जाऊंगा और जनकनन्दिनीकी कुशल-वार्ता लाऊंगा। हनुमानकी धीरता देखकर रामचन्द्र बहुत खुश हुये। उन्होंने एकान्तमें ले जाकर हनुमानसे कहा कि, मैं तुम्हें यह अंगूठी देता हूं। इसे सीताके साम्हने रखकर उससे कहना कि, तुम्हारे वियोगसे रामचन्द्र बहुत दुःख पा रहे हैं–दिन रात उन्हें चैन नहीं है। तुम्हारे छुड़ानेका उपाय किया जा रहा है। चिन्ता न करना। इतना कहकर वे बोले कि, अब तुम जाओ, विलम्ब मत करो। हनुमान रामचन्द्रको नमस्कार कर और अंगूठी लेकर लङ्काकी ओर रवाना हो गया। रास्तेमें उसे एक विद्या मिली। उसकी कुछ भी पर्वा न कर वह उसका उदर चीरता हुआ चला गया और धीरे २

लङ्कामें जा पहुंचा। वहां पहुंचकर एक आदमीसे उसने पूछा कि, क्यों भाई तुम्हें यह बात मालूम है कि रावण रामचन्द्रकी स्त्रीको चुराकर ले आया है? और यदि मालूम हो तो यह भी बता दो कि वह कहां ठहराई गई है? तुम्हारी बड़ी कृपा होगी। उस मनुष्यने सीताका पता हनुमानको बता दिया। उसके कहे अनुसार हनुमान उसी वनमें गया जहां सीता ठहराई गई थी। हनुमान वहां एक वृक्षपर चढ़ गया, और छिपकर सब हाल देखने लगा। उसने देखा कि, कामी रावणने अपनी मन्दोदरी आदि स्त्रियोंको सीताके पास भेजी हैं। वे उसके पास आकर बोलीं कि, हम सब तेरे सुखका उपाय करती हैं। हम नहीं चाहतीं कि, तुझे किसी तरहका दुःख उठाना पड़े। देख! रावण सब विद्याओंका स्वामी है। उसके अच्छी सुन्दर २ एक हजार युवतियां भी हैं। परन्तु फिर भी वह तुझपर जी जानसे मुग्ध हो गया है। तुझे अपना भाग्य चमकीला समझना चाहिये, जो आज वह तुझे अपनी सब स्त्रियोंमें प्रधान प्रिया बनाना चाहता है। तू स्वयं अपने चित्तमें विचार कि इससे और अधिक क्या पुण्य-कर्म हो सकता है? रामचन्द्र साधारण मनुष्य हैं। उनसे उतना लाभ तू नहीं उठा सकती कि, जितना रावणको अपना प्रियतम बनाकर उठावेगी। इस प्रकार और भी बहुतसी बातें मन्दोदरी सीतासे कहती रही। सीताको मन्दोदरीकी इस निर्लज्जतापर बड़ा क्रोध आया।

वह झिड़कार उससे बोली कि, हे मन्दोदरी! तेरी तो प्रतिव्रता स्त्रियोंमें बड़ी प्रशंसा सुनती थी, परन्तु आज यह नदीका उलटा बहना कैसा? तुझे ऐसा कहते हुये कुछ लज्जा आनी चाहिये कि मैं कुलीना होकर आज क्या अनर्थ करती हूं। मैं नहीं जानती थी कि तेरा कुल ऐसा होगा। क्या सचमुच यही तेरे कुलकी मर्यादा है? यदि वास्तवमें यही बात है तो पहले तू ही यह बता कि, तूने आजतक कितने पति किये हैं? तू मुझे बड़ी मूर्खा जान पड़ती है, जो तुझे इतना भी विचार न हुआ कि, कुलीन कन्याका एक ही पति होता है। बस, खबरदार! अब ऐसे अश्लील वचन मुखसे न कहना। सीताकी फटकार मन्दोदरीको बहुत बुरी लगी। वह जलकर खाक हो गई। उसने सीताको दुःख देना चाहा था कि इतनेमें वृक्षपरसे हनुमान उतरा और मन्दोदरी आदिको कुछ अपने कियेका फल देकर सीताके पास पहुंचा। सीताको नमस्कार कर उसने रामचन्द्रका हाल कहा और वह रामचन्द्रकी दी हुई अंगूठी उसके साम्हने रख दी। अंगूठीको देखकर सीता बहुत आनन्दित हुई। उसने हनुमानसे पूछा कि, भाई! तुम्हारा नाम क्या है? और कहांसे चले आते हो? उत्तरमें हनुमानने कहा कि, मैं रामचन्द्रका सेवक हूं। मेरा नाम है हनुमान। सुग्रीवके कहे अनुसार रामचन्द्रने मुझे तुम्हारी कुशलवार्ता लानेके लिये यहां भेजा है। सुनकर सीताको बहुत खुशी हुई। उसने फिर पूछा—भाई! रामचन्द्र और लक्ष्मण कुशल

तो हैं? हनुमान बोला कि, तुम चिन्ता न करो। वे दोनों भाई बहुत अच्छी तरहसे हैं। वे अभी किष्किन्धापुरीमें सेनाके साथ ठहरे हुये हैं। वे बड़े पुण्य पुरुष हैं, जो उनके साथ विद्याधरोंका स्वामी सुग्रीव भी हो गया है। वे बहुत ही जल्दी यहां तुम्हें छुड़ानेके लिये आवेंगे। इस प्रकार उसने सीताको बहुत कुछ ढाढ़स बँधाई। सीता जबसे यहां लाई गई, तभीसे भूखी थी। उसने कुछ नहीं खाया था, सो हनुमानने उसी समय भोजन सामग्री लाकर उसे भोजन कराया। भोजनके बाद फिर भी रामचन्द्रकी प्रेमकथा वह सीताको सुनाने लगा।

जब मन्दोदरीको हनुमानने उसके कियेका फल दिया, तो वह दौड़ी हुई अपने प्रियतमके पास गई और रोकर हनुमानकी सब बात उससे कह दी। सुनकर रावण बड़ा क्रोधित हुआ, उसने अपने सैनिक वीरोंसे कहा कि, तुम अभी जाओ और उस पशुकी जो सीताके पास बैठा हुआ है खबर लो। आज्ञाके होते ही बहुत सैनिक वीर हनुमानपर चढ़कर आये। उन्हें आते हुये देखकर हनुमान भी झटसे आकाशमें जाकर उनसे निडर होकर लड़ने लगा। बड़े २ वृक्षोंको उखाड़कर उनसे वह रावणकी सेनाको मृत्युशय्यापर सुलाने लगा। अपने भीषण युद्धसे थोड़ी ही देरमें उसने सारी राक्षसी सेनाको हरा दी, और फिर स्वयं रावणके पास आकर उससे बोला कि, हे विद्याधराधिपति! तू तो बड़ा बुद्धिमान समझा जाता था।

तुझे यह मूर्खता कैसे सूझी, जो दूसरेकी स्त्रीके द्वारा सुख भोगनेकी इच्छा करता है? तू यह नहीं जानता कि उसका स्वामी रामचन्द्र कितना प्रतापी है? और उसका भाई लक्ष्मण भी। तू ऐसे वीरकी स्त्रीको लाकर क्या अपना जीवन सुखसे विता सकेगा? मुझे तो यह संभव नहीं दीख पड़ता। इसी प्रकार हनुमानने उसे वहुत फटकारा। सुनकर रावण वड़ा क्रोधित हुआ। उसने अपने नोकरोंसे कड़ककर कहा कि, वड़े आश्चर्यकी वात है कि, यह कितना अपमान कर रहा है और तुम इसके मुखके साम्हने ही देख रहे हो। जल्दी इसका सिर काट डालो। स्वामीकी आज्ञा पाते ही नौकर उसपर टूटे परन्तु फिर भी वह उसका कुछ न कर सके। हनुमान झटसे आकाशकी ओर चला गया और रावणकी धृष्टतापर क्रोधित होकर उसने सारी लङ्कामें आग लगा दी। इसके वाद वह दौड़ा हुआ सीताके पास आया और उससे कुछ अभिज्ञान (निशानी) देनेके लिये प्रार्थना की। वियोगिनी सीताने उसे अपना चूड़ारत्न देकर और रामचन्द्रके लिये कुछ शुभ समाचार कहकर विदा दिया। हनुमान सीताको नमस्कार कर वहांसे रवाना हुआ और थोड़े ही समयमें रामचन्द्रके पास आ उपस्थित हुआ। वाद सीताका दिया हुआ चूड़ारत्न उनके साम्हने रखकर उसने सीताके कहे हुये सव समाचार उन्हें सुना दिये। उन्होंने जो २ वातें सीताके सम्वन्धकी पूछीं, उनका उत्तर हनुमानने देकर उनके चित्तको वहुत सन्तोषित किया।

इसके वाद यह हाल सुग्रीवादिकको भी मालूम हुआ।

वे सब मिलकर इसपर विचार करने लगे कि, अब हमें क्या करना उचित है? रावण कैसे जीता जा सकेगा? सीता कैसे लाई जायगी? और कैसे हम रामचन्द्रको सन्तोषित कर सकेंगे? हम लोगोंने रामचन्द्रकी ओर होते वक्त तो कुछ भी नहीं विचारा और झटसे उनमें आ मिले परन्तु जब रावण यह हाल सुनेगा तब क्रोधमें अन्धा होकर वह हमारा बुरा करनेसे कैसे चूकेगा? हमें यह भी अभी ठीक नहीं मालूम है कि रामचन्द्र और लक्ष्मण कैसे वीर हैं? और जबतक हम उनकी पराक्रम शक्तिका ठीक २ परिचय न पा लेवें, तबतक हमें अपने जीतनेकी आशा करना भी व्यर्थ है। इस लिये सबसे पहले इनके बलकी जांच करनी चाहिये। वह जांच इनके कोटिशिलाके उठा लेनेपर हो सकेगी। क्योंकि कोटि शिला वही उठा सकता है जो नारायण हो, और वही प्रति-नारायणका मारनेवाला होता है। रावण प्रतिनारायण है यह हम अच्छीतरह जानते हैं। जब कि हमारी जांच ठीक हो जाय, तब फिर इन दोनों भाइयोंका साथ देनेमें कोई हानि नहीं है। अन्यथा रावणके द्वारा इनका और हमारा भी सर्वनाश होगा। विद्याधरोंके इस विचारको विराधितने जाकर रामचन्द्रसे कह दिया। यह सुनकर लक्ष्मणने बड़ी निर्भीकतासे कहा कि, ये लोग क्यों इतनी कायरता दिखलाते हैं। सब मिलकर शिलाके पास चलें। मैं नियमसे उसे उठाकर अपने पराक्रमका ज्ञान सबको करा दूंगा। लक्ष्मणके कहे अनुसार विद्याधर और वानर-

वंशी मिलकर अच्छे मुहूर्त्तमें रामचन्द्र और लक्ष्मणके साथ कोटिशिलाके पास गये। वहां पहुचते ही लक्ष्मणने उस एक योजन चौड़ी और चौकोनी सर्वतोभद्र नाम शिलाकी आठ द्रव्योंसे पूजा की और फिर उसे नमस्कार कर अपने हाथोंसे जांघके बराबर उठा ली। लक्ष्मणकी यह अनुपम वीरता देखकर देवोंने उसकी बहुत प्रशंसा की, उसपर फूल वर्षाये और अनेक तरहके बाजे बजाये। उसी दिनसे यह भरतखण्डमें आठवां वसुदेव प्रसिद्ध हुआ। यही रावणके वंशका पूर्ण नाश करेगा, यही पुरुषोत्तम है। इस तरह देवोंके द्वारा जब और २ विद्याधरोंने लक्ष्मणकी प्रशंसा सुनी, तब उन्हें यह निश्चित हो गया कि, यह रावण-का नाश करेगा। उस समय विद्याधरोंने बड़ी खुशी मनाई, दोनों भाइयोंकी पूजन की, और पश्चात् वे अपने सुन्दर विमानपर उन्हे बैठाकर किष्किन्धापुरीमें ले आये।

अब रावणसे युद्ध होना निश्चय किया गया। सब विद्याधर अपनी २ सेना इकट्ठी करने लगे और सेना ले ले कर रामचन्द्रके दलमें मिलने लगे। सीताके भाई भामण्डलके पास भी दूत भेजा गया। वह भी एक हजार अक्षौहिणी सेना लेकर आ उपस्थित हुआ। सुग्रीवादि भी अपनी २ सेनाको लेकर आ गये। रामचन्द्रके पुण्यसे उस समय विद्याधर और वानरवंशियोंकी अगणित सेना इकट्ठी हो गई। इतनी अपार सेना देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मणको बहुत बड़ी खुशी हुई।

जब सेना सजकर तयार हो गई, तब उसके चलनेके लिये

आज्ञा दी गई। सव सेनाके लोग अपने २ विमानोंपर चढ़कर लङ्काकी ओर रवाना हुये। वीचमें समुद्र लांघकर वे त्रिकूटाचलपर आये। उन्होंने राक्षसोंकी राजधानी लङ्का खूव सजी हुई देखी। लङ्काके चारों ओर एक विशाल प्राकार था। लङ्काके देखते ही रामचन्द्रकी सेनाको अच्छे २ शकुन हुये। रामचन्द्र और लक्ष्मणको इससे वड़ा भारी आनन्द हुआ। जव इनके आनेका हाल रावणको माॡम हुआ, तव उसे वड़ा क्रोध आया, परन्तु वह उनका कर कुछ नहीं सका।

एक दिनकी वात है कि, सीता तो अपनी रक्षा किये हुए धीरताके साथ वनमें वैठी हुई थी और रात्रिके वक्त रावण वहां पहुंचा और उसने वहुतसे उपद्रव करने आरंभ किये। राक्षस, भूत, पिशाच, डाकिनी, सर्प, हाथी और सिंह आदि भयंकर जीवजन्तु गर्जना करते हुये उसे दिखलाये, पानी वरसाया, अग्निकी भयंकर लीला प्रज्वलित की और वड़े २ पहाड़ोंके टूटनेका शब्द किया। ऐसे भयंकर उपद्रवोंसे अच्छे २ वीर पुरुषोंकी भी हिम्मत जाती रहती है। उनके अकस्मात् देखनेसे सीताको डर तो अवश्य लगा, परन्तु उसने अपने अखण्ड शीलव्रतको किंचित् भी मलीन न होने दिया। उसने उपद्रवोंके द्वारा मर जाना अच्छा समझा, परन्तु रावणका आश्रय लेना उचित न समझा। उसने अपनी रक्षाकी प्रार्थना किसीसे न की। इसी तरह वह नराधम सारी रात उसपर उपद्रव करता रहा। परन्तु जनकनन्दि-

नीके सुमेरु समान हृदयको किसी तरह विचलित न कर सका। अन्तमें निराश होकर वह अपने घरपर चला गया। सीताकी अप्राप्तिमें काम उसे अधिकाधिक अधीर करने लगा। परन्तु परवशतासे उसे मन मारकर रह जाना पड़ा। जब यह हाल विभीषणको मालूम हुआ, तो उसे बड़ी दया आई। वह सीताके पास गया और उससे उसने पूछा कि, हे माता! क्यों रो रही हो? उत्तरमें सीताने अपनी सब कहानी सुना दी। सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। वह वहां सीताको विश्वास देकर रावणके पास आया और उससे बोला कि, हे पूज्य! आप तो स्वयं विद्वान् हैं। यह आप अच्छी तरह जानते हैं कि परस्त्रीसेवन करनेसे बुराइयां उत्पन्न होती हैं। इसलिये मैं विनीत होकर प्रार्थना करता हूं कि आप जिसकी स्त्री लाये हैं उसे पीछी उसीके सुपुर्द कर दें तो अच्छा हो। ऐसा करनेसे हमारे कुलकी कीर्ति चारों ओर फैलेगी। आप जरा शान्त होकर विचार करें। इसमें अपनी भलाई न होगी। हे महाभाग! अन्याय करनेसे लाभ न हुआ है और न होगा। सुखके लिये धर्म सेवन करना उचित है। धर्मसे सीता ही क्या किन्तु उससे भी कहीं अच्छी २ सुन्दरियां स्वयमेव धर्मात्मा पुरुषको अपना पति बनाती हैं। आशा है कि, आप बुरी वासनाको अपने चित्तसे हटा देंगे। देखिये रामचन्द्र यहां आ पहुंचे हैं। वे अभी राजधानीके बाहिर ही हैं। यदि आप सीताको उन्हें सौंप देंगे, तो वे वहींसे खुश होकर लौट जावेंगे और कुछ भी झगड़ा न

होगा। अन्यथा वे तो अपनी प्रियाको लेनेको आये हैं, सो लिवा ही जावेंगे। परन्तु उस हालतमें भारी हानि होनेकी संभावना है। इस लिये वैर न बढ़कर शान्त हो जाय, तो बहुत अच्छा हो। शान्तिका उपाय सीताको वापिस दे देना ही है। बस यही मेरी प्रार्थना है। अब जैसा उचित जचै, वैसा करें।

विभीषणके समझानेका उसपर उलट प्रभाव पड़ा। शान्तिकी जगह क्रोधने उसे विवश किया। वह विभीषणसे बोला कि, पापी! तू मेरा भाई होकर भी मेरे दोषोंका उल्लेख करता है और रामचन्द्र जो कि न जाने कौन हैं उसकी प्रशंसा करता है। तुझे कहते हुये लज्जा भी नहीं आती? बस मैं इससे अधिक तुझ सरीखे दुष्टसे कुछ कहना नहीं चाहता हूं और न सम्बन्ध ही रखना चाहता हूं। खबरदार! अब जो कुछ भी मुहँमेंसे वचन निकाला तो। तेरी खैर इसीमें है कि तू यहांसे निकल जा। अब तुझे इस शहरमें रहनेका अधिकार नहीं है। उत्तरमें विभीषणने कुछ न कहकर केवल इतना ही कहा कि, अच्छा तुम्हारी जैसी इच्छा होगी वही होगा। मैं भी ऐसे अनीति करने वाले राजाके अधिकारमें नहीं रहना चाहता। इतना कहकर विभीषण अपनी सेनाको लेकर लङ्कासे निकल गया और सुग्रीवसे जाकर मिला। उसने अपने आनेकी सब कथा सुग्रीवसे कह सुनाई। सुनकर सुग्रीव बहुत खुश हुआ। वह रामचन्द्रके पास जाकर बोला कि, महाराज! विभीषण रावणसे लड़कर आया है। सुनकर रामचन्द्र भी बहुत खुश

हुये। उन्होंनें उससे मिलनेकी इच्छा की। सुग्रीव जाकर विभीषणको रामचन्द्रके पास लिवा लाया और दोनोंकी उसने भेट करा दी। रामचन्द्रने विभीषणके गलेसे लगाकर उससे पूछा कि, लङ्काधिराज! अच्छी तरह तो हो? अव तुम सव चिन्ताओंको छोड़ो और विश्वास करो कि तुम्हें लङ्काका राज्य दिया जायगा। विभीषणने कहा—जैसा आप विश्वास दिलाते हैं वैसा ही होगा। क्योंकि महात्माओंके वचन कभी झूठे नहीं होते। वाहिर निकला हुआ हाथीका दांत फिर भीतर नहीं घुसता। रामचन्द्रने फिर भी यही कहा कि, सव अच्छा होगा। तुम निश्चिन्त रहो। उस समय वानरवंशियोंको विभीषणके अपने पक्षमें मिल जानेसे वड़ी भारी खुशी हुई। सच है, अच्छे पुरुषके मिलनेसे किसे आनन्द नहीं होता? जव विभीषणके रामचन्द्रसे मिल जानेका हाल रावणको मालूम हुआ, तो वह भी उसी समय तयार हुआ और अपने शूर वीरोंको तयार होनेकी उसने आज्ञा दी। स्वामीकी आज्ञा पाते ही इन्द्रजीत मेघनाद और कुंभकर्ण आदि जितने वीर योद्धा थे, वे सव रावणके पास आ उपस्थित हुये। यह देख रावण अपनी सव सेनाको साथ लेकर और वन्दीजनोंके द्वारा अपना यशोगान सुनता हुआ लङ्कासे वाहिर हुआ। रावणकी सेना वहुत थी, उससे सारा आकाशमण्डल आच्छादित हो गया था। उसकी चार हजार अक्षौहिणी सेनाके साम्हने आनेकी दैत्योंकी भी हिम्मत नहीं पड़ती थी, फिर मनुष्योंकी

तो बात ही क्या है? सारा आकाश और पृथ्वी सेना-मई दीख पड़ती थे। सेना युद्धभूमिमें उपस्थित हुई कि, बाजोंके शब्द होने लगे, हाथी चिंघाड़ मारने लगे, घोड़े हींसने लगे, रथोंके पहियोंके चरड़ चूं चरड़ चूं शब्द होने लगे, भाट शूरवीरोंका यश गाने लगे, शूर वीर खूब जोर २ से हंसने लगे और धनुष्यपर डोरी चढ़ानेका शब्द होने लगा। कहनेका अभिप्राय यह है कि, उस समय सारा संसार शब्दमय हो गया। इस भयानक कोलाहलके मारे एकका शब्द एक नहीं सुन पाता था। युद्धकी इस भयंकरताको देखकर कायर लोगोंके हाथोंसे शस्त्र गिर पड़े। वीरोंको बड़ा आनन्द हुआ। उनके पुराने घाव फिर नये होगये। फटकर उनमेंसे खून बहने लगा कवचोंकी सन्धियां टूट गईं। यह कोलाहल देखकर रामचन्द्रने जान लिया कि, रावण भी सेना लेकर आ चढ़ा है। उन्होंने अपनी सेनाको भी तयार होनेकी आज्ञा दी। सेना तयार हुई। दोनों वीरोंने अपनी २ सेनाको लड़नेकी आज्ञा दी। अपने २ स्वामीकी आज्ञा पाते ही दोनों सेनाएँ परस्पर भिड़ गईं। युद्धका सूत्रपात हुआ।

हाथियोंसे हाथी और घोड़ोंसे घोड़े भिड़े, रथोंसे रथोंकी टक्करें हुईं, पांव चलनेवाली सेना अपने साथियोंसे भिड़ी, और बाणसे लड़नेवाले अपने साथियोंसे भिड़े। आकाश बाणोंसे छागया, चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। हाथियोंको हाथी गिराने लगे, घोड़ोंका

घोड़ोंसे नाश होने लगा, बहुतोंके हाथोंसे शस्त्र गिरने लगे, एकका हाथ पकड़कर एक खींचने लगा, परस्पर मुष्टियोंसे मारने लगे, कितने वीर पुरुष अपने एक हाथके कट जानेसे दूसरे हाथसे शत्रुको मारने लगे, कितनोंका धड़ युद्धभूमिमें नृत्य करने लगा, कितने चिल्ला २ कर शत्रुको पुकारने लगे और कहने लगे कि, अभी क्यों मरना चाहता है, जा अपने स्त्री पुत्रादिसे मिल और आनन्द भोग। युद्धमें प्राण देनेसे क्या होगा? अथवा मेरे साम्हने आ, मैं तुझे युद्धका मजा दिखलाऊं। उधर दूसरेने कहा—जरा स्वस्थ हो ले, अपने बिखरे हुये केशोंको सम्हाल और पीछे युद्ध करनेको तयार हो। इतनेमें तीसरेने कहा कि, युद्धमें मरकर क्या लाभ उठावेगा? तू मेरे पास चला आ, फिर तुझे कोई नहीं मार सकेगा। इस समय युद्ध भूमिकी शोभा ही विलक्षण दीख पड़ती थी। वह खासी समुद्रकी श्रीको धारण किये थी—समुद्रमें बड़े २ जलहाथी होते हैं उनकी जगह युद्धभूमिमें मरकर गिरे हुये हाथी थे, समुद्रमें मगर होते हैं उनकी जगह युद्धभूमिमें घोड़े थे, समुद्रमें बड़ी २ मछलियां होती हैं युद्धभूमिमें उनकी जगह घोड़ोंके पांव थे, समुद्रमें जल रहता है युद्धभूमिमें उसकी जगह खूनका स्रोत वह रहा था, समुद्रमें फेन होते हैं उनकी जगह युद्धभूमिमें राजाओंके सिरपर रहनेवाले श्वेत छत्र थे, समुद्रमें रत्नराशि होती है युद्धभूमिमें राजा महाराजाओंके मुकुटोंके रत्न थे, समुद्रमें सर्प होते हैं युद्धभूमिमें उनकी जगह हाथियोंकी सूंड़ें थीं, समुद्रमें नानाप्रकारकी धातु-

एं होती हैं उनकी जगह युद्धभूमिमें अनेक तरहके सुवर्ण चांदी आदिके भूषण थे।

जो लोग डरपोंक थे—जिनका तेज विलकुल नष्ट हो चुका था, वे वेचारे तो इस समुद्रके पारतक न पहुंचने पाये थे कि, वीचहीमें उन्हें अपनी जीवनलीला संवरण करनी पड़ी। जो हिम्मत वहादुर थे, वे शक्तिभर उसके पार होनेके उपाय करने लगे। इस भीषण युद्धमें रामचन्द्र-की सेनाने रावणकी सेनाको मार भगाई। यह देख रावण स्वयं उठा और अपने भागते हुए वीरोंको उसने ललकारा। कहा कि, वीरो! यह भागनेका समय नहीं है, ठहरो, और इन पामरोंको मारकर विजयश्री प्राप्त करो। वे लोग कायर हैं, जो युद्धमें पीठ दिखाते हैं। तुम ऐसे वीर होकर इन थोड़े से मनुष्योंकी सेनासे डरकर भागे जाते हो? क्या यही तुम्हारी वीरता है? युद्धसे भागकर अपने कुलको कलंकित न करो किन्तु यश लाभकर स्वर्ग प्राप्त करो। रावणके कहते ही वीरोंका हृदय जोशके मारे उमड़ उठा, वे आकर रामचन्द्रकी सेनापर टूट पड़े। उन्होंने देखते २ रामचन्द्रकी सेनाको व्याकुल कर दी। वह रावणके प्रवल प्रतापको न सहकर भाग निकली। यह देख लक्ष्मण-णने कहा—यह सेना क्यों भागती है? उत्तर मिला कि रावणके प्रतापको न सह सकनेके कारण सेना भाग रही है। लक्ष्मणने अपने वीरोंको ललकारा कि—वीरो! भागो मत, तुम्हारा सेनापति आगे होकर अभी रावणकी वीर-ताका तुम्हें परिचय दिये देता है। तुम अभी अपनी आखोंसे देखोगे कि, रावणकी क्या गति होती है? यह

कहते २ लक्ष्मण अपने वीरोंको साथ लिये हुये युद्धभूमिमें जा पहुँचा। रावण लक्ष्मणको देखकर कुछ हँसा और बोला कि, तू अभी तो वालक है, क्यों तुझे अपनी मृत्युसे डर नहीं है ? मुझे तेरी इस वाल्य अवस्थापर वड़ी दया आती है। नहीं जान पड़ता कि, तुझे मृत्यु क्यों अच्छी लगती है ? सुनकर लक्ष्मणने रावणसे कहा– तू वड़ा ही ढीठ है, जो चोरी करके भी साहूकार वननेका दावा रखता है। मैं वालक हूं, तौ भी क्या हुआ ? तेरे कर्मका फल तुझे देनेके लिये तो अच्छी तरहसे समर्थ हूं। परस्परके इस कठोर भाषणने दोनोंको अभिमानी वना दिया। दोनों ही मानी वीर ताल ठोककर युद्धभूमिमें उतर पड़े। लड़ाई आरंभ हुई। एककी मुष्टी एक पर पड़ने लगी। वे दोनों युद्धमें वड़ी जल्दी करते थे। किस समय वे मुट्ठी वांध लेते थे और कव मार देते थे, इसका देखने-वालोंको कुछ भी पता नहीं चलता था। उनके चक्र, वाण और भाला आदि शस्त्रोंका युद्ध वड़ा भीषण होता था। लोग उसे देखकर आश्चर्य करते थे। इस युद्धमें लक्ष्मणकी विजय हुई। उसने रावणको आकुल कर दिया, उसके हाथीको गिरा दिया। रावण अपने हाथीको वेकामका देखकर उससे उतर पड़ा और उसी समय उसने लक्ष्मणके ऊपर शक्ति चलाई। शक्ति व्यर्थ न जाकर लक्ष्मणको लगी। उससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह हाल रामचन्द्रको मालूम हुआ। वे उसी समय लक्ष्म-णके पास आये और लक्ष्मणको मूर्च्छित देखकर स्वयं भी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उनका शीतलोपचार

किया गया । कुछ समय बाद वे सचेत हुये । भाईकी यह हालत देख वे बहुत दुखी हुये । युद्ध रुकवा दिया गया । रावणसे रामचन्द्रने कहा कि, हमारे भाईकी तबियत बहुत खराब है, युद्ध बन्द कर दिया जाय । उनके कहे माफिक रावणने युद्ध बन्द कर दिया । रावण यह समझकर कि मैं सर्वथा विजयी हुआ अब मुझे किसीका डर नहीं है अपनी राजधानीमें चला गया और सुखपूर्वक रहने लगा । इसी अवसरमें अष्टाह्निक पर्व आ गया । सब धर्मध्यानमें लग गये । किसीको युद्धका ध्यान तक न रहा ।

उधर वे युद्धभूमिसे लक्ष्मणको डेरेपर लिवा ले गये । कुटिल रावणका अधिक भय होनेसे उसकी रक्षाके लिये विद्याके द्वारा प्रबन्ध किया गया । रामचन्द्रको तो सिवाय रोनेके और कुछ नहीं सूझता था । उनकी यह हालत देखकर सुग्रीव विभीषण आदिको बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने रक्षाका और भी कड़ा प्रबन्ध किया । रामचन्द्र दुखी होकर भामण्डलसे बोले कि, तुम अपनी बहिनके पास जाओ और उससे कहो कि, तुम्हारे लिये लक्ष्मणने अपने प्राण दे दिये हैं और अब उसके साथ २ रामचन्द्र भी अग्निप्रवेश करेंगे । तुम अपने कुलकी रीति न छोड़ना ।

रामचन्द्र अधीर हो उठे । उनसे वह दुःख सहा नहीं गया । वे रोकर कहने लगे कि, हाय ! मैं बड़ा ही पापी हूं जो मुझे असमयमें यह यंत्रणा भोगनी पड़ी । प्यारे भाईका मुझे वियोग हुआ, मुझे इस बातका और भी अधिक दुःख है कि मैं विभीषणके सामने झूठा होऊंगा । वह मुझे क्या कहेगा ? जो हो मैं उससे क्षमा चाहता हूं ।

भाई विराधित ! तुम चिता तयार करो, भाईके साथ २ मैं भी अपनी जीवनलीला पूर्ण करूंगा। मैं विना भाईके क्षणमात्र भी नहीं जी सकता। तुम सवसे मैं क्षमा चाहता हूं। रामचन्द्र यों कह रहे थे कि, इतनेमें एक विद्याधरने आकर हनुमानसे कहा कि, मैं लक्ष्मणके जीनेका उपाय वताता हूं, मेरा कहना सुनो—हनुमानने खुश होकर उससे पूछा कि, तुम जल्दी उपाय वताओ, लक्ष्मणकी तवियत वहुत खराव है। विशेप वातचीतके लिये अवकाश न होनेसे मैं अभी क्षमा मांगता हूं। वह वोला कि, एक वक्त मुझे भी शक्ति लगी थी, तव उसे हठानेके लिये मुझ-पर विशल्याका जल छींटा गया था। और जव कभी हमारे यहां किसी तरहकी महामारी चलती है, तव उसीके जलसे शान्ति की जाती है। तुम भी वैसा ही करो। सुन-कर हनूमानने पूछा विशल्या कहॉ रहती है? विद्याधर कहने लगा कि—

एक द्रोण नामका राजा है। वह भरतका मामा है। उसकी विशल्या नामकी कन्या है। तुम उसके पास जाओ। हनूमानने यह हाल रामचन्द्रसे कहा। रामचन्द्रने कहा—हो सके तो उपाय करो। उसमें अपनी हानि क्या। और कुछ नहीं तो अवतक आशा तो है। अस्तु। इसके लिये भामण्डल और हनूमान तैयार हुये। वे दोनों वहांसे रवाना होकर अयोध्या पहुंचे और यह सव हाल उन्होंने भरतसे कहा। उसे रावणपर वड़ा क्रोध आया। वह रावणसे युद्ध करनेके लिये अपनी

सेनाको तयार होनेके लिये आज्ञा देने लगा। उसे रोककर हनूमानने कहा—यह अभी उचित नहीं है। पहले भाईके जिलानेका उपाय कीजिये। वह तुम्हारे मामाकी विशल्या पुत्रीके स्नान किये हुये जलसे जी सकेगा। भरतने कहा—अभी रात है प्रातःकाल होते ही उसके शरीरका जल मैं तुम्हें ला दूंगा। सुनकर हनूमानने कहा—तुम कहते हो, वह ठीक है परन्तु सूर्योदयका होना लक्ष्मणके लिये अच्छा नहीं है। अर्थात् जिसे शक्ति लगती है, उसका रात्रिके भीतर ही भीतर प्रतिकार यदि किया जाय, तब तो वह जी सकता है, अन्यथा उसका जीना मुश्किल होता है। इस लिये अभी जाकर ही जल लाना उचित है। उठिये विमान तयार है, मैं भी आपके साथ २ चलता हूं। भरत उठे और विमानपर चढ़कर अपने मामाके यहां पहुंचे। सोते हुये द्रोणको उठाया और उससे सब हाल कहा। द्रोणने उसी वक्त विशल्याको बुलवाई और उससे कहा कि, बेटी, लक्ष्मण शक्तिके लगनेसे मूर्च्छित पड़ा हुआ है, तू अपने शरीरका जल जल्दी दे दे, जिससे वह सचेत हो सके। पिताका कहना सुनकर विशल्याने उनसे पूछा कि, पिताजी! ये लक्ष्मण कौन हैं? द्रोणने कहा—लक्ष्मण दशरथ और सुमित्राका पुत्र और रामचन्द्रका छोटा भाई है। रावणने उसपर शक्ति मारी है। इस लिये हनूमान तुम्हारे शरीरका गन्धजल लेनेको आया है। तुम जल्दी इसे जल दो, जिससे यह ले जाकर उसे जिलावे। दिनका निकलना उसके लिये अमङ्गलकारक है। विशल्याने कहा—

पिताजी! आपसे अपनी धृष्टताकी क्षमा चाहती हूं। मैं लक्ष्मणके गुण सुना करती थी और उसी समय उनपर मुग्ध हो उन्हें मैंने अपने जीवनेश समझ लिये थे। आज अवसर है। मैं स्वयं ही उनके पास जाकर अपना कर्तव्य पालन करती हूं। आप मुझे आज्ञा दीजिये। पिताजीकी आज्ञा लेकर विशल्या हनूमानके साथ २ आई। वह जैसे २ लक्ष्मणके पास पहुंचने लगी, शक्ति वैसे २ ही लक्ष्मणके शरीरसे निकलती गई। विशल्याने जाकर लक्ष्मणके शरीरका स्पर्श किया कि, इतनेमें शक्ति उसके शरीरसे निकल भागी! भागते समय उसे द्वारपर बैठे हुये हनूमानने पकड़ी और क्रोधमें आकर उससे कहा कि, वोल, अव तुझे क्या दण्ड दिया जाय? तूने हम लोगोंको वड़ा तङ्ग किया है। तू वहुत दिनमें हाथ आई है, मैं तुझे अव नहीं छोड़नेका। शक्ति हनूमानसे हाथ जोड़कर वोली कि, हे महात्मा! अव तो मुझे छोड़ दो, मैं आजसे प्रतिज्ञा करती हूं कि अव कभी आपकी सेनामें नहीं आऊंगी। रामचन्द्र वड़े पुण्यशाली हैं। परन्तु अव उनका पुण्य सीमापर पहुंच चुका है। हनूमानने फिर उससे पूछा—तू यह तो वता कि, तुझमें कितनी शक्ति है? वह वोली कि, वीर! क्या तुम मेरी शक्ति नहीं जानते हो जो पूछते हो? अस्तु। सूर्यको पृथिवीपर गिरा सकती हूं, चन्द्रमाका ग्रास कर सकती हूं, इन्द्रको रसातलमें भेज सकती हूं और अधिक क्या कहूं, मैं यदि पांचसौ कोसकी दूरीपर होऊं, तौ भी अपना असर वहींसे डाल सकती हूं। आश्चर्य है

कि वह असर आपपर पास रहते हुये भी बिल्कुल नहीं चलता। हनूमानने उससे फिर न आनेकी प्रतिज्ञा करवाकर उसे छोड़ दी। उसने जाकर रावणसे कहा कि, महाराज! मैं अब कभी रामचन्द्रकी सेनामें नहीं जाऊंगी। क्योंकि उनके अपार पुण्यके सामने मेरा कुछ बल नहीं चलता है।

जब लक्ष्मणकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह एकदम यह कहता हुआ उठा कि, मारो! मारो!! पकड़ो!!! देखो, चोर रावण भागने न पावे। लक्ष्मणको सचेत देखकर रामचन्द्र, सुग्रीव, भामण्डल और हनूमान आदिको बहुत खुशी हुई। सबोंने बड़ा भारी आनन्दोत्सव मनाया। इसके बाद विशल्याका सब वृत्तान्त लक्ष्मणको सुनाकर उसके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह कर दिया।

उधर रावण अष्टाह्निक पर्व आया समझ बहुरूपिणी विद्या साधनेको अपने जिनमन्दिरमें गया और ध्यान लगाकर अपना अभीष्ट सिद्ध करने लगा। यह हाल जब रामचन्द्रको मालूम हुआ, तब वे अङ्गदसे बोले कि, अवसर अच्छा है, तुम जाओ और रावणकी विद्यासिद्धिमें विघ्न करो। उनके कहते ही अङ्गद अपने बहुतसे साथियोंको लेकर रावणकी विद्या सिद्धिकी जगहपर पहुंचा और घोरसे घोर उपद्रव करना उसने आरंभ किये। उसने अपनी करनीमें किसी तरहकी कसर न की, परन्तु धीर वीर रावणने उसकी कुछ परवा न की। जब वह रावणकी कुछ हानि न कर सका, तब उसे निराश होकर

वापिस अपने डेरेपर लौट जाना पड़ा। रावणने अपना अनुष्ठान पूरा किया। उसे विद्याकी सिद्धि होगई। वह इस विद्याके द्वारा अनेक तरहके रूप वनाने लगा।

लक्ष्मण जब अच्छे हो गये, तब फिर रामचन्द्रने रावणके पास युद्धका आमंत्रण भेजा। वह उसी समय सजधजकर युद्धभूमिमें आ उपस्थित हुआ। उसकी सेना विजयकी इच्छासे आनन्द रव करने लगी। यह देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मण भी अपनी सारी सेनाको लेकर युद्धभूमिमें आये। दोनों ओरसे अपनी २ सेनाको लड़नेकी आज्ञा दी गई। परस्परमें दोनों सेनाकी मुठभेड़ हुई। वीरपुरुष जीनेकी कुछ परवा न कर युद्ध करने लगे। लक्ष्मणने रामचन्द्रसे कहा—पूज्य! आप यहीं ठहरें, मैं जाकर युद्ध करता हूं। रावणको अभी ही धराशायी वनाता हूं। रामचन्द्र लक्ष्मणके कहे अनुसार युद्धभूमिमें न जाकर वाहर ही ठहरे और लक्ष्मण युद्धके लिये उतरा। लक्ष्मण और रावणका भीषण युद्ध होने लगा। परन्तु अभी किसीके सिर विजयमुकुट नहीं वँधा। रावण अवकी वार लक्ष्मणको अपने साथ वहुत देरतक युद्ध करता हुआ देखकर वहुत क्रोधित हुआ। उसने लक्ष्मणके ऊपर अग्निवाण चलाया, उसे लक्ष्मणने मेघवाणसे रोक दिया। रावणने सर्पवाण चलाया, उसे लक्ष्मणने गरुड़वाणसे रोका। अवकी रावणने तामसवाण चलाया, उसे लक्ष्मणने सूर्यवाणसे रोका। रावण दूसरा वाण छोड़ना ही चाहता था कि, लक्ष्मणने वड़ी फुर्तीसे अपने अर्धच-

न्द्रबाणसे उसका सिर काट दिया। सिरके कटते ही उसने दो सिर बनाये। लक्ष्मणने अबकी दोनों सिर काट डाले। उसने चार सिर बना लिये। गरज यह कि जैसे २ रावण सिर बढ़ाता गया, वैसे २ लक्ष्मण उन्हें काटता गया। सच है कि, विद्यासे सब काम सिद्ध हो सकते हैं। यह देखकर रावण बड़ा क्रोधित हुआ। उसकी आखें लाल २ हो गईं और भृकुटियां चढ़ गईं। उसने लक्ष्मणकी यह अपूर्व शक्ति देखकर और उसका साधारण उपायोंसे पराजित न होना समझकर चक्ररत्नको स्मरण किया। चक्र हाथमें आ उपस्थित हुआ। रावणके हाथमें चक्र आया समझकर लक्ष्मणकी सेना उसके तेजको न सह सकी। वानरवंशी घबराये। सच है, जिसकी हजारों देव सेवा करते रहते हैं, उससे किसे डर न होगा?

चक्र अपने हाथमें लेकर रावणने लक्ष्मणसे कहा—अरे नीच! मेरे साम्हनेसे अलग हो, नहीं तो अभी तुझे अपने घमण्डका मजा बताये देता हूं। देख, अब भी भाग जा—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। मुझे तेरी इस अवस्थापर दया आती है, इसीसे मैं तुझे अपनी रक्षा करनेको कहता हूं। तू बड़ा ढीठ है, जो इतनेपर भी साम्हनेसे अलग नहीं हटता। सुनकर लक्ष्मणकी भी क्रोधाग्नि धधक उठी। उसने भी रावणको सूखी २ सुनाना आरंभ कीं। वह बोला कि, तू बड़ा मूर्ख है, जो इस कुम्हारके चक्रसे अपनेको धन्य और अजेय मान रहा है? अरे दरिद्र! तुझे लज्जा आनी चाहिये, जो इस

चमकते हुये काचके टुकड़ेको पाकर जौहरी बनना चाहता है? चोरोंके गुरु! तू राजा कहलाता है, फिर भी तुझे दूसरेकी स्त्री लाते हुये लज्जा न आई? देखूं, मैं तेरे इस चक्रकी ताकत! तू इसे खुशीके साथ चला। मैं तुझे अभी इसका प्रतिफल दिये देता हूं। समय क्यों खो रहा है, अपना काम पूरा क्यों नहीं करता? लक्ष्मणके कहनेने उसके क्रोधको और अधिक बढ़ा दिया। उसने क्रोधान्ध होकर लक्ष्मणपर चक्र चला दिया। चक्र लक्ष्मणको कुछ भी हानि न पहुंचा कर उलटा प्रदक्षिणा दे कर उसके हाथमें आ गया। लक्ष्मण चक्र हाथमें लेकर रावणसे बोला कि, पापी! अब भी समय है। यदि तुझे अपनी जान प्यारी है, तो जाकर बड़े भाईके पावोंपर गिर और उनसे अपना अपराध क्षमा करा, नहीं तो इसी चक्रसे तेरे सिरके टुकड़े २ किये देता हूं। रावणका मुख उतर तो गया, परन्तु फिर भी उसने हिम्मत बांधकर लक्ष्मणसे कहा कि, दूसरेकी झूठी वस्तु पाकर भी इतना अभिमान! तुझे लज्जा आनी चाहिये, जो दूसरेके धनपर इतना कूद रहा है? अस्तु। तू अपनेको अब अजेय समझता है तो समझ। मुझे इससे क्या? तू चक्र चला मैं अभी तेरे घमण्डको चूर २ किये देता हूं। रावण चुप हुआ ही था कि,—लक्ष्मणने चक्र उसके ऊपर फेंका। चक्रने पहुँचते ही रावणके सिरको उसके धड़से अलग कर दिया। रावण पृथ्वीपर धड़ामसे गिरा। उसके गिरते ही सेनामें हाहाकार मच गया। अनाथ सेना जिधर रास्ता मिला, उधर ही भाग निकली। युद्धका अन्त हुआ।

विभीषणने भाईका अग्निसंस्कार किया । संसारकी यह लीला देखकर इन्द्रजीत मेघनाद आदि उसी वक्त उदासीन होकर तपोवनमें चले गये । उसी दिनसे रामचन्द्रकी कीर्त्तिपताका सारे संसारमें फहराने लगी । लक्ष्मणने चक्ररत्नकी पूजा की । विभीषणको लङ्काका राज्य दिया गया । सब राक्षसवंशी रामचन्द्रसे आकर मिले । भामण्डल सुग्रीव और हनूमान आदिको वहुत खुशी हुई । इसके वाद रामचन्द्र जी सीतासे मिले । सीताने स्वामीको नमस्कार किया । वहुत दिनोंके वाद आज दोनोंके विरह—दुःखकी इतिश्री हुई । रामचन्द्रने सीताको पीछी पाकर अपनेको कृतार्थ माना । दोनोंका सुखसम्मिलन हुआ । एकके देखनेसे एकको परम आनन्द हुआ । थोड़ी ही देर वाद वहीं लक्ष्मण भी आया और सीताके पावोंपर गिर पड़ा । सीता उसे उठाकर कुशल समाचार पूछने लगी । लक्ष्मणने अपनी सव कथा उसे कह सुनाई । सवको इस समागमसे वड़ी खुशी हुई । यह वात ठीक है कि जिस विरहसे दिनरात दुःख उठाना पड़ता है, वह जव दूर हो जाता है तव किसे आनन्द नहीं होता? रामचन्द्र और सीताके दिन पहलेकी तरह अब फिर भी सुखसे वीतने लगे ।

जव रामचन्द्रका उज्ज्वल सुयश चारों ओर फैल गया, तव वहुतसे राक्षसोंने आकर उनकी आधीनता स्वीकार की । उन्हें अच्छी २ वस्तुएं भेटमें दीं । विद्याधर उनकी सेवा करने लगे । इस सुखमें रामचन्द्रके वहुत दिन वीत

गये, उन्हें समयका कुछ खयाल नहीं रहा। रामचन्द्रने चौदह वर्षके लिये अयोध्या छोड़ी थी, सो आज वह अवधि पूर्ण हुई। उन्हें अकस्मात् अपनी जन्मभूमिकी याद आ गई। सच तो है—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी."

जैसे २ समय वीतने लगा, वैसे २ उसकी अभिलाषा अधिक २ वढ़ती गई। अच्छा दिन देखकर उन्होंने अयोध्याके लिये गमन किया। उनके साथ २ विभीषण, सुग्रीव, हनूमान और विराधित आदि वहुतसे बड़े २ राजा गये। मार्गमें और भी वहुतसे देशोंको रामचन्द्रने अपने वश किये। कुछ दिनोंके वाद वे अयोध्यामें जा पहुंचे। रामचन्द्रके आनेके समाचारसे अयोध्यावासियोंको वड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने महाराजकी खुशीमें वहुत उत्सव किया। भरत—उन्हें लिवानेको वहुत दूरतक आये और पहिले ही पहुंच कर उन्होंने दोनोंके चरणोंकी अभिवन्दना की। रामचन्द्रने भरतको आलिङ्गन कर उससे कुशलता पूछी। सव आनन्दित हुये। आज रामचन्द्र अयोध्यामें प्रवेश करेंगे, इस लिये सारी नगरी खूब सजाई गई। रामचन्द्र शहरमें होते हुये अपने महलमें पहुंचे। पहले ही अपनी सव माताओंसे मिले। माताओंने पुत्रकी आरती उतारी। इसके वाद रामचन्द्र अपनी प्रजासे प्रेमपूर्वक मिले। सवको वहुत खुशी हुई। रामचन्द्र राज्य पालन करने लगे। इस खुशीमें रामचन्द्रने मित्र, भाई, वन्धु और विद्याधर आदि जितने अपने

प्रेमपात्र थे, उन्हें बहुत सी जागीरें दी। रामचन्द्रके शासनसे प्रजा बहुत सन्तुष्ट हुई।

रामचन्द्र परस्त्रीके पापसे रहित थे इस लिये उनकी कीर्ति सब दिशामें विस्तृत हो गई, और रावण इसी परस्त्रीके पापसे मरकर नरक गया। उसकी कीर्त्ति नष्ट हुई, उसके कुलमें कलङ्क लगा और अन्तमें दूसरेके हाथसे उसकी मृत्यु हुई। सारांश यह है कि, परस्त्रीसेवनसे दोनों लोक बिगड़ते हैं, हजारों वर्षका उज्ज्वल सुयश एक समयमात्रमें नष्ट हो जाता है, शरीर रोगोंका घर होकर जीर्णप्राय हो जाता है और फिर बुरी तरह मृत्यु होती है। इस लिये हे बुद्धिमानो! परस्त्रीसे संसर्ग करना छोड़ो। जो परस्त्रीके त्यागी हैं, वे संसारमें निर्भय हो जाते हैं, उनकी कीर्त्ति सब जगह फैल जाती है। देखो, यही रावण त्रिखण्डका स्वामी था, लङ्का सरीखी पुण्यपुरी इसकी राजधानी थी, और उसके प्रतापसे बड़े २ राजे महाराजे डरते थे। आज उसी वीरकी केवल परस्त्रीहरणके पापसे यह दशा हुई, तो और साधारण पुरुष इस परस्त्री व्यसनसे कितना दुःख उठावेंगे, यह अनुभवमें नहीं आता। और कुछ नहीं तो, परस्त्री सेवन करनेवालोंको इस लोकमें धनहानि और शारीरिक कष्ट और परलोकमें नरकादि कुगतियोंके दुःख तो सहने ही पड़ते हैं। इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है। वे मनुष्य नहीं हैं, किन्तु नीच हैं, जो दूसरोंकी स्त्रीसे अपनी बुरी वासना पूरी करते हैं। वे झूठा खानेवाले कुत्ते हैं। भाइयो! परस्त्रीसेवन सर्वथा

निंद्य है इसे छोड़कर अपनी ही स्त्री में संतोष करो। यही धर्मात्मा होने की पहली सीढ़ी है, इसी तरह बहुत सी कथायें पर स्त्री के सम्बन्ध की है। उन सब का अभिप्राय केवल इस पाप प्रवृति का छुड़ाना है कथा के पढ़ने का फल यही होना चाहिये कि उससे कुछ शिक्षा ली जावे, केवल पढ़ना किसी काम का नहीं है। वह तो तोते का सा रटना है। अंत में यह कहना है कि इस पापाचार से होने वाली हानियों का विचार कर उसके छोड़ने में उद्यम शील बनो, पर स्त्री की संगति से अपनी रक्षा करो और

साथ ही सर्व सुखों का मूल कारण तथा चन्द्रमा की तरह शीतल जैन धर्म रत्न ग्रहण करो इससे तुम्हारा भला होगा सुख पावोगे।

छप्पय – कुजाति बहन गुन गहन दहन दावानलसी है। सुजस चन्द्र घन घटा देह कृश करन खई है। धन सरसोखन धूप धरमदिन सांझ समानो विपति भुजंग निवास बांबई वेद बखानो, इहि विधि अनेक औगुन भरी प्रान हरन फांसी प्रबल मत करहु मित्र यह जान जिय परवनिता सौं प्रीति कल। भूधर

जो विचार शील महात्मा स्वर्ग और मोक्ष का सुख चाहते हैं उन्हें इन

पापव्यसनों का संसर्ग छोड़ना चाहिए।
इन व्यसनों के छोड़ने पर ही वे धर्म ग्र-
हण करने के पात्र हो सकेंगे, क्योंकि
अविवेकी और व्यसनों के सेवन करने
वालों की अच्छी गति नहीं होती। वे
सर्वत्र निन्दा के पात्र होते हैं। और उनके
द्वारा धर्म को भी कलंक लगता है। न
मुझे व्याकरण का ज्ञान है न न्याय ही
का और न मेरी पुराण काव्यों में गति
है। इस लिये संभव है कि इस ग्रंथ में
बहुत सी त्रुटियां रही होंगी; विद्वानों
से मेरी प्रार्थना है कि वे इस ग्रंथ का
संशोधन करें क्यों कि इस के द्वारा भी

सर्व साधारण लाभ उठा सकेंगे। जो इसका अभ्यास करेंगे अथवा बार २ मनन करेंगे और पढ़ेंगे वे सुखी होवेंगे। उनकी बुद्धि दिनों दिन निर्मल होती रहेगी और पाप वासना उन्हें कभी छू तक नहीं सकेगी। नन्दीतट गच्छ में श्री भीमसेन मुनि होगये हैं उनकी कृपा से मुझ मंद बुद्धि ने यह ग्रंथ रचा है। अब इसका विस्तार करना सज्जनों के हाथ है। मुझ मन्द बुद्धि सोमकीर्ति के बनाये हुए इस ग्रंथ का जो श्रद्धा और भक्ति सहित स्वाध्याय करेंगे, मनन करेंगे और सुनेंगे वह नियम से सुख संपत्ति

के भोगने वाले होवेंगे। विक्रम महाराज की मृत्यु के बाद १५२९ संवत में माघ सुदि प्रतिपदा सोमवार के दिन मैंने इस ग्रंथ को समाप्त किया। जब तक संसार में मेरु पर्वत सूर्य चंद्रमा पृथिवी और समुद्र विद्यमान रहें तब तक इस ग्रंथ का भी प्रचार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता जाय। सज्जन पुरुष इस ~~ग्रंथ~~ का स्वाध्याय कर अपना जीवन सफल करें।

॥ शुभम्॥